मुद्रक और प्रकाशक
शांतिलाल हरजीवन शाह
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद–१४

पहली आवृत्ति १०,०००
पुनर्मुद्रण १०,०००
पुनर्मुद्रण ३,०००

१.२५

फरवरी,

निवेदन

गांधीजीके विचार आसान हिन्दुस्तानीमें जनताके सामने रखना धी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा, दिल्ली' के अनेक कामोंमें से एक खास है। गांधीजी अकसर आसान भाषामें ही लिखते थे। उन्होंने जो राती भाषामें लिखा है, वह बिलकुल सरल है।

फिर भी मुमकिन है कि गुजराती, हिन्दी और दूसरी भाषाओंमें शब्द आसानीसे समझे जाते हैं, वे सिर्फ उर्दू जाननेवालोंके लिए नये इसलिए अनुवादमें ऐसे शब्दोंके साथ साथ आसान उर्दू शब्द भी ठीक समझा है। उम्मीद है कि इस तरह उर्दू जबान हिन्दीके ीक आयेगी और उर्दू जाननेवाली जनता हिन्दुस्तानकी दूसरी ाओंका साहित्य भी आसानीसे समझ सकेगी।

गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभाने नवजीवनके साथ तय किया है गांधीजीकी जो किताबें वह तैयार करेगी, उनकी नागरी आवृत्ति ५नेका भार नवजीवनका होगा।

काका कालेलकर

दो शब्द

लंदनसे दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए गांधीजीने रास्तेमें जो संवाद लिखा और 'हिन्द स्वराज्य' के नामसे छपाया, उसे आज पचास बरस हो गये।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय लोगोंके अधिकारोंकी रक्षाके लिए सतत लड़ते हुए गांधीजी १९०९ में लंदन गये थे। वहां कई क्रांतिकारी स्वराज्य-प्रेमी भारतीय नवयुवक उन्हें मिले। उनसे गांधीजीकी जो बातचीत हुई उसीका सार गांधीजीने एक काल्पनिक संवादमें ग्रथित किया है। इस संवादमें गांधीजीके उस समयके महत्त्वके सब विचार आ जाते हैं। किताबके बारेमें गांधीजीने स्वयं कहा है कि "मेरी यह छोटीसी किताब इतनी निर्दोष है कि बच्चोंके हाथमें भी यह दी जा सकती है। यह किताब द्वेषधर्मकी जगह प्रेमधर्म सिखाती है; हिंसाकी जगह आत्म-बलिदानको स्थापित करती है; और पशुबलके खिलाफ टक्कर लेनेके लिए आत्मबलको खड़ा करती है।" गांधीजी इस निर्णय पर पहुंचे थे कि पश्चिमके देशोंमें, यूरोप-अमेरिकामें जो आधुनिक सभ्यता जोर कर रही है, वह कल्याणकारी नहीं है, मनुष्य-हितके लिए वह सत्यानाशकारी है। गांधीजी मानते थे कि भारतमें और सारी दुनियामें प्राचीन कालसे जो धर्म-परायण नीति-प्रधान सभ्यता चली आयी है वही सच्ची सभ्यता है।

गांधीजीका कहना था कि भारतसे केवल अंग्रेजोंको और उनके राज्यको हटानेसे भारतको अपनी सच्ची सभ्यताका स्वराज्य नहीं मिलेगा। हम अंग्रेजोंको हटा दें और उन्हींकी सभ्यताका और उन्हींके आदर्शका स्वीकार करें, तो हमारा उद्धार नहीं होगा। हमें अपनी आत्माको बचाना चाहिये। भारतके लिखे-पढ़े चंद लोग पश्चिमके मोहमें फंस गये हैं। जो लोग पश्चिमके असर तले नहीं आये हैं, वे भारतकी धर्म-परायण नैतिक सभ्यताको ही मानते हैं। उनको अगर आत्मशक्तिका उपयोग

करनेका तरीका सिखाया जाय, सत्याग्रहका रास्ता वताया जाय, तो वे पश्चिमी राज्य-पद्धतिका और उससे होनेवाले अन्यायका मुकावला कर सकेंगे तथा शस्त्रवलके विना भारतको स्वतंत्र करके दुनियाको भी वचा सकेंगे।

पश्चिमका शिक्षण और पश्चिमका विज्ञान अंग्रेजोंके अधिकारके जोर पर हमारे देशमें आये। उनकी रेलें, उनकी चिकित्सा और रुग्णालय, उनके न्यायालय और उनकी न्यायदान-पद्धति आदि सव वातें अच्छी संस्कृतिके लिए आवश्यक नहीं हैं, वल्कि विघातक ही हैं — वगैरा वातें विना किसी संकोचके गांधीजीने इस कितावमें दी हैं।

मूल किताव गुजरातीमें लिखी गयी थी। उसके हिन्दुस्तान आते ही वंवई सरकारने आक्षेपार्ह वताकर उसे ज़ब्त किया। तव गांधीजीने सोचा कि 'हिन्द स्वराज्य' में मैंने जो कुछ भी लिखा है, वह जैसाका वैसा अपने अंग्रेजी जाननेवाले मित्रों और टीकाकारोंके सामने रखना चाहिये। उन्होंने स्वयं गुजराती 'हिन्द स्वराज्य' का अंग्रेजी अनुवाद किया और उसे छपाया। उसे भी वम्वई सरकारने आक्षेपार्ह घोषित किया।

दक्षिण अफ्रीकाका अपना सारा काम पूरा करके सन् १९१५ में गांधीजी भारत आये। उसके वाद सत्याग्रह करनेका जव पहला मौका गांधीजीको मिला, तव उन्होंने वंवई सरकारके हुक्मके खिलाफ 'हिन्द स्वराज्य' फिरसे छपवाकर प्रकाशित किया। वम्वई सरकारने इसका विरोध नहीं किया। तवसे यह किताव वम्वई राज्यमें, सारे भारतमें और दुनियाके गंभीर विचारकोंके वीच ध्यानसे पढ़ी जाती है।

स्व० गोखलेजीने इस कितावके विवेचनको कच्चा कहकर उसे नापसन्द किया था और आशा की थी कि भारत लौटनेके वाद गांधीजी स्वयं इस कितावको रद कर देंगे। लेकिन वैसा नहीं हुआ। गांधीजीने एकाध सुधार करके कहा कि आज मैं इस कितावको अगर फिरसे लिखता, तो उसकी भाषामें जरूर कुछ सुधार करता। लेकिन मेरे मूलभूत विचार वही हैं, जो इस कितावमें मैंने व्यक्त किये हैं।

गांधीजीके प्रति आदर और उनके विचारोंके प्रति सहानुभूति रखनेवाले दुनियाके वड़े वड़े विचारकोंने 'हिन्द स्वराज्य' के वारेमें जो संमति

प्रगट की है, उसका सार श्री महादेव देसाईने नई आवृत्तिकी अपनी सुन्दर प्रस्तावनामें दिया ही है।

अहिंसाका सामर्थ्य, यंत्रवादका गांधीजीका विरोध और पश्चिमी सभ्यता तीनोंके बारेमें और सत्याग्रहकी अंतिम भूमिकाके बारेमें भी पश्चिमके लोगोंने अपना मतभेद स्पष्ट रूपसे व्यक्त किया है।

गांधीजीके सारे जीवन-कार्यके मूलमें जो श्रद्धा काम करती रही, वह सारी 'हिन्द स्वराज्य' में पायी जाती है। इसलिए गांधीजीके विचार-सागरमें इस छोटीसी पुस्तकका महत्त्व असाधारण है।

गांधीजीके बताये हुए अहिंसक रास्ते पर चलकर भारत स्वतंत्र हुआ। असहयोग, कानूनोंका सविनय भंग और सत्याग्रह — इन तीनों कदमोंकी मददसे गांधीजीने स्वराज्यका रास्ता तय किया। हम इसे चमत्कारपूर्ण घटनाका त्रिविक्रम कह सकते हैं।

गांधीजीके प्रयत्नका वही हाल हुआ, जो दुनियाकी अन्य श्रेष्ठ विभूतियोंके प्रयत्नोंका होता आया है।

भारतने, भारतके नेताओंने और एक ढंगसे सोचा जाय तो भारतकी जनताने भी गांधीजीके द्वारा मिले हुए स्वराज्य-रूपी फलको तो अपनाया, लेकिन उनकी जीवन-दृष्टिको पूरी तरह अपनाया नहीं है। धर्म-परायण, नीति-प्रधान पुरानी संस्कृतिकी प्रतिष्ठा जिसमें नहीं है, ऐसी ही शिक्षा-पद्धति भारतमें आज प्रतिष्ठित है। न्यायदान पश्चिमी ढंगसे ही हो रहा है। इसकी तालीम भी जैसी अंग्रेजोंके दिनोंमें थी वैसी ही आज है। अध्यापक, वकील, डॉक्टर, इंजीनियर और राजनीतिक नेता — ये पांच मिलकर भारतके सार्वजनिक जीवनको पश्चिमी ढंगसे चला रहे हैं। अगर पश्चिमके विज्ञान और यांत्रिक कौशल्य (Technology)का सहारा हम न लें और गांधीजीके ही सांस्कृतिक आदर्शका स्वीकार करें, तो भारत जैसा महान देश साउदी अरेबिया जैसे नगण्य देशकी कोटि तक पहुंच जायगा, यह डर भारतके आजके सभी पक्षके नेताओंको है।

भारत शांततावादी है, युद्ध-विरोधी है। दुनियाका साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, शोषणवाद, राष्ट्र-राष्ट्रके बीच फैला हुआ उच्च-नीच भाव —

इन सवका विरोध करनेका कंकण भारत-सरकारने अपने हाथमें बांधा है। तो भी जिस तरहके आदर्शका गांधीजीने अपनी किताव 'हिन्द स्वराज्य' में पुरस्कार किया है, उसका तो उसने अस्वीकार ही किया है। स्वाभाविक है कि इस तरहके नये भारतमें अंग्रेजी भाषाका ही वोलवाला रहे। सिर्फ अमेरिका ही नहीं, किन्तु रशिया, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, जापान आदि विज्ञान-परायण राष्ट्रोंकी मददसे भारत यंत्र-संस्कृतिमें जोरोंसे आगे वढ़ रहा है। और उसकी आंतरिक निष्ठा मानती है कि यही सच्चा मार्ग है। पू० गांधीजीके विचार जैसे हैं वैसे नहीं चल सकते।

यह नई निष्ठा केवल नेहरूजीकी नहीं, किन्तु करीव करीव सारे राष्ट्रकी है। श्री विनोवा भावे गांधीजीके आत्मवादका, सर्वोदयका और अहिंसक शोषण-विहीन समाज-रचनाका जोरोंसे पुरस्कार कर रहे हैं। ग्रामराज्यकी स्थापनासे, शांतिसेनाके द्वारा, नई तालीमके ज़रिये, स्त्री-जातिकी जागृतिके द्वारा वे मानस-परिवर्तन, जीवन-परिवर्तन और समाज-परिवर्तनका पुरस्कार कर रहे हैं। भूदान और ग्रामदानके द्वारा सामाजिक जीवनमें आमूलाग्र क्रांति करनेकी कोशिश कर रहे हैं। लेकिन उन्होंने भी देख लिया है कि पश्चिमके विज्ञान और यंत्र-कौशल्यके विना सर्वोदय अधूरा ही रहेगा।

जव अमेरिकाका प्रजासत्तावाद, रशिया और चीनका साम्यवाद, दूसरे और देशोंका और भारतका समाजसत्तावाद और गांधीजीका सर्वोदय दुनियाके सामने स्वयंवरके लिए खड़े हैं, ऐसे अवसर पर गांधीजीकी इस युगांतरकारी छोटीसी कितावका अध्ययन जोरोंसे होना चाहिये। गांधीजी स्वयं भी नहीं चाहते थे कि शब्द-प्रमाणकी दुहाई देकर हम उनकी वातें जैसीकी वैसी ग्रहण करें।

'हिन्द स्वराज्य' की प्रस्तावनामें गांधीजीने स्वयं लिखा है कि व्यक्तिशः उनका सारा प्रयत्न 'हिन्द स्वराज्य' में वताये हुए आध्यात्मिक स्वराज्यकी स्थापना करनेके लिए ही है। लेकिन उन्होंने भारतमें अनेक साथियोंकी मददसे स्वराज्यका जो आन्दोलन चलाया, कांग्रेसके जैसी राजनीतिक राष्ट्रीय संस्थाका मार्गदर्शन किया, वह उनकी प्रवृत्ति पार्लियामेन्टरी स्वराज्य (Parliamentary Swarajya) के लिए हीथी।

स्वराज्यके लिए अन्यायका, शोषणका और परदेशी सरकारका विरोध करनेमें अहिंसाका सहारा लिया जाय, इतना एक ही आग्रह उन्होंने रखा है। इसलिए भारतकी स्वराज्य-प्रवृत्तिका अर्थ उनकी इस बालमूर्ति पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' से न किया जाय।

गांधीजीकी यह चेतावनी कांग्रेसके स्वराज्य-आन्दोलनका विपर्यास करनेवालोंके लिए थी। आज जो लोग भारतका स्वराज्य चला रहे हैं, उनके बचावमें भी यह सूचना काम आ सकती है। भारतके राष्ट्रीय विकासका दिन-रात चिंतन करनेवाले चिंतक और नेता भी कह सकते हैं कि हमारे सिर पर 'हिन्द स्वराज्य' के आदर्शका बोझा गांधीजीने नहीं रखा था।

लेकिन अगर गांधीजीकी बात सही है और भारतका और दुनिया-का भला 'हिन्द स्वराज्य'में प्रतिबिम्बित सांस्कृतिक आदर्शसे ही होने-वाला है, तो इसके चिंतनका, नव-ग्रथनका और आचरणका भार किसीके सिर पर तो होना ही चाहिये।

मैंने एक दफे गांधीजीसे कहा था कि "आपने अपनी स्वराज्य-सेवाके प्रारम्भमें 'हिन्द स्वराज्य' नामक जो पुस्तक लिखी उसमें आपके मौलिक विचार हैं, तो भी शंका होती है कि वे रस्किन, थोरो, एडवर्ड कारपेन्टर, टेलर, मैक्स नार्डू आदि लोगोंके चिंतनसे प्रभावित हैं। इन लोगोंने आधुनिक सभ्यताके दोष दिखाये हैं। विश्व-बंधुत्वकी बुनियाद पर स्थापित पुरानी सभ्यताका इन लोगोंने पुरस्कार किया, इसलिए आपका 'हिन्द स्वराज्य' पढ़नेसे यही ख़याल होता है कि आप भूतकालको फिरसे जाग्रत करनेके पक्षमें हैं। आपको बार-बार कहना पड़ता है कि आप भूतकालके उपासक नहीं हैं। मानव-जातिने गलत रास्ते जितनी प्रगति की उतना रास्ता पीछे चलकर सच्चे रास्ते पर लगनेके बाद आप फिर नीतिनिष्ठ, आत्मनिष्ठ रास्तेसे नई ही प्रगति करना चाहते हैं। तो:

"आपका जीवन-कार्य करीब करीब समाप्त होने आया है। भारत-का स्वराज्य स्थापित होनेकी तैयारी है। ऐसे समय पर आप फिरसे अपने जीवनभरके अनुभव और चिंतनकी बुनियाद पर ऐसी एक नयी ही किताब क्यों नहीं लिखते, जिसमें भविष्यकी एक हजार सालकी महामानव संस्कृतिका

बीज दुनियाको मिले ? " वे अपने कार्यमें इतने व्यस्त थे और बिगड़ता हुआ मामला सुधारनेकी प्राणपणसे चेष्टा करनेके लिए इतने चिंतित थे कि मेरी सूचना या प्रार्थना सुननेकी भी उनकी तैयारी नहीं थी।

अब जब गांधीजीका दुनियवी जीवन पूरा हो चुका है और उनके लेखोंका, भाषणोंका, पत्रोंका और मुलाकातोंका अशेष संग्रह तैयार हो रहा है, तब आदर्श संस्कृतिके बारेमें और उसे स्थापित करनेके बारेमें गांधीजीके विचार इकट्ठा करके ऐसा एक प्रभावशाली चित्र किसी अधिकारी व्यक्तिको तैयार करना चाहिये, जिसे हम 'हिन्द स्वराज्य' की परिणत आवृत्ति नहीं कहेंगे; उसे तो स्वराज्य-भोगी भारतका विश्वकार्य या ऐसा ही कुछ कहना होगा।

जो हो, ऐसी एक किताबकी बहुत ही ज़रूरत है।

इसके मानी यह नहीं कि वह किताब इस 'हिन्द स्वराज्य' का स्थान ले सकेगी। इस अमर किताबका स्थान तो भारतीय जीवनमें हमेशाके लिए रहेगा ही।

१ अगस्त, १९५९ काका कालेलकर

नई आवृत्तिकी प्रस्तावना

['हिन्द स्वराज्य' की यह जो नई आवृत्ति प्रकाशित होती है, उसके दीवाचेके तौर पर 'आर्यन पाथ' मासिकके 'हिन्द स्वराज्य अंक' की जो समालोचना मैंने 'हरिजन' में अंग्रेजीमें लिखी थी, उसका तरजुमा देना यहां नामुनासिब नहीं होगा। यह सही है कि 'हिन्द स्वराज्य' की पहली आवृत्तिमें गांधीजीके जो विचार दिखाये गये हैं, उनमें कोई फेर-बदल नहीं हुआ है। लेकिन उनका उत्तरोत्तर[1] विकास[2] तो हुआ ही है। मेरे नीचे दिये हुए लेखमें उस विकासके बारेमें कुछ चर्चा की गई है। उम्मीद है कि उससे गांधीजीके विचारोंको ज्यादा साफ समझनेमें मदद होगी। —म० ह० दे०]

महत्त्वका प्रकाशन

'आर्यन पाथ' मासिकने अभी अभी 'हिन्द स्वराज्य अंक' प्रकाशित किया है। जिस तरह ऐसा अंक[3] निकालनेका विचार अनोखा है, उसी तरह उसका रूप-रंग भी बढ़िया है। इसका प्रकाशन श्रीमती सोफिया वाड़ियाके भक्तिभाव-भरे श्रमका आभारी है। उन्होंने 'हिन्द स्वराज्य' की नकलें परदेशमें अपने अनेक मित्रोंको भेजी थीं और उनमें जो मुख्य थे उन्हें उस पुस्तकके बारेमें अपने विचार लिख भेजनेके लिए कहा था। खुद श्रीमती वाड़ियाने तो उस पुस्तकके बारेमें लेख लिखे ही थे और ये विचार जाहिर किये थे कि उसमें भारतवर्षके उजले भविष्यकी आशा रही है। लेकिन उस पुस्तकमें यूरोपकी अंधाधुंधीको भी मिटानेकी शक्ति है, ऐसा यूरोपके विचारकों और लेखक-लेखिकाओंसे उन्हें कहलाना था। इसलिए उन्होंने यह योजना[4] निकाली। उसका नतीजा अच्छा आया है। इस खास अंकमें अध्यापक सॉडी, कोल, डिलाइल बर्न्स, मिडलटन मरी, बेरेसफर्ड, ह्यू फॉसिट, क्लॉड हूटन, जिराल्ड हर्ड, कुमारी रैय-

१. लगातार। २. खिलना। ३. नंबर। ४. तरकीब।

वोन वगैरा अनेक नामी लेखक-लेखिकाओंके लेख छपे हैं। उनमें से कुछ तो शांतिवादी और समाजवादीके तौर पर मशहूर हैं। लेकिन जिनके विचार शांतिवाद और समाजवादके खिलाफ हैं, ऐसे लोगोंके लेख भी इस अंकमें आये होते तो अंक कैसा होता! जो लेख दिये गये हैं उनकी व्यवस्था इस तरह की गई है कि 'शुरूके लेखोंमें जो आलोचनायें और उज्र आये हैं, उनमें से बहुतोंके जवाब बादके लेखोंमें आ जाते हैं।' लेकिन दो-एक टीकायें लगभग सब लेखकोंने की हैं, इसलिए पहले उनका विचार करना ठीक होगा। कुछ बातें ऐसी कही गई हैं, जिन्हें तुरन्त स्वीकार कर लेना चाहिये। अध्यापक 'सॉडीने लिखा है कि वे हालमें ही हिन्दुस्तान आये थे और यहां उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं देखा जिसे ऊपर-ऊपरसे देखने पर ऐसा लगे कि 'हिन्द स्वराज्य' में बताये हुए सिद्धान्तों[1]को कुछ ज्यादा सफलता मिली है। यह बिलकुल सच बात है। ऐसी ही सही बात मि० कोलने कही है कि गांधीजीकी 'सिर्फ अकेलेकी बात सोचनी हो तो वे ऐसे स्वराज्यके नजदीक इन्सान जितना पहुंच सकता है उतना पहुंच ही चुके हैं। लेकिन उसके अलावा एक और सवाल रहता है; वह यह कि इन्सान इन्सानके बीच जो खाई है, खुद अकेले अमुक आचरण करना और दूसरोंको उनकी बुद्धिके मुताबिक आचरण करनेमें मदद करना — इन दोनोंके बीच जो अंतर है उसे कैसे पाटा जाय? इस दूसरी चीजके लिए तो औरोंके साथ रहकर, उनमें से एक बनकर, उनके साथ तादात्म्य — एकता साधकर मनुष्यको आचरण करना पड़ता है; एक ही समयमें अपना असली रूप और दूसरेका धारण किया हुआ रूप यानी व्यक्तित्व (जिसे खुद जांच सके, जिसकी टीका-टिप्पणी कर सके और जिसकी कीमत आंक सके), ऐसे दो तरहके बरताव रखने पड़ते हैं। गांधीजीने अपने आचरणकी साधनाको आखिरी हद तक पहुंचाया जरूर है, लेकिन इस दूसरे सवालको, खुदको संतोष हो इस तरह, वे हल नहीं कर पाये हैं।' फिर जॉन मिडलटन मरी कहते हैं वह भी सही है कि 'अहिंसाको अगर सिर्फ राजनीतिक[2] दबावके

---

१. उसूलों। २. सियासी।

एक साधनके तौर पर इस्तेमाल किया जाय, तो उसकी शक्ति जल्दी खतम होती है।' और फिर सवाल यह उठता है कि 'ऐसी अहिंसाको क्या सच्ची अहिंसा कहा जा सकता है?'

लेकिन यह सारी क्रिया लगातार विकासकी क्रिया है। उस साध्य[1]-की सिद्धिके लिए कोशिश करते करते मनुष्य साधन[2]की संपूर्णताके लिए भी कोशिश करता रहता है। सैंकड़ों बरस पहले बुद्ध और ईसा मसीहने अहिंसा और प्रेमके सिद्धान्तका उपदेश किया था। इन सैंकड़ों बरसोंमें इक्के-दुक्के व्यक्तियोंने छोटे-छोटे और सीमित[3] प्रश्नोंमें उसका प्रयोग किया है। गांधीजीके बारेमें एक बात स्वीकार हो चुकी है, जिसका जिक्र करते हुए इस लेख-संग्रह[4]में जिराल्ड हर्डने कहा है कि 'गांधीजीके प्रयोगमें सारे जगतको दिलचस्पी है, और उसका महत्त्व[5] युगों तक कायम रहेगा। इसका कारण यह है कि उन्होंने समूहको लेकर या राष्ट्रीय पैमाने पर उसका प्रयोग करनेकी कोशिश की है।' उस प्रयोगकी कठिनाइयां तो साफ हैं, लेकिन गांधीजीको भरोसा है कि इन मुश्किलोंको पार करना नामुमकिन नहीं है। हिन्दुस्तानमें १९२१ में वह प्रयोग नामुमकिन मालूम हुआ और उसे छोड़ देना पड़ा। लेकिन जो बात उस समय नामुमकिन थी, वह १९३० में मुमकिन हुई। अब भी बहुत बार यह सवाल उठता है कि 'अहिंसक साधनका अर्थ क्या है?' उस शब्दका सबको मंजूर हो ऐसा अर्थ और उसकी मर्यादा[6] तय करने और उसे चालू करनेसे पहले अहिंसाका लंबे अरसे तक प्रयोग और आचरण[7] करनेकी जरूरत है। पश्चिमके विचारक अकसर भूल जाते हैं कि अहिंसाके आचरणमें सबसे जरूरी और न टाली जा सकनेवाली चीज प्रेम है; और शुद्ध निःस्वार्थ प्रेम मनकी और शरीरकी बेदाग — निष्कलंक शुद्धिके बिना संभव नहीं है और प्राप्त नहीं किया जा सकता।

'हिन्द स्वराज्य' की प्रशंसाभरी समालोचनामें सब लेखकोंने एक बातका जिक्र किया है: वह है गांधीजीका यंत्रोंके बारेमें विरोध।

---

१. मक़सद। २. जरिया। ३. महदूद। ४. मजमुआ। ५. अहमियत। ६. हद। ७. अमल।

समालोचक इस विरोधको नामुनासिब और अकारण[1] मानते हैं। मिडलटन मरी कहते हैं: 'गांधीजी अपने विचारोंके जोशमें यह भूल जाते हैं कि जो चरखा उन्हें बहुत प्यारा है, वह भी एक यंत्र ही है और कुदरतकी नहीं लेकिन इन्सानकी बनायी हुई एक अकुदरती — कृत्रिम चीज है। उनके उसूलके मुताबिक तो उसका भी नाश करना होगा।' डिलाइल बर्न्स कहते हैं: 'यह तो बुनियादी विचार-दोष है। उसमें छिपे रूपसे यह बात सूचित की गई है कि जिस किसी चीजका बुरा उपयोग हो सकता है, उसे हमें नैतिक दृष्टिसे हीन मानना चाहिये। लेकिन चरखा भी तो एक यंत्र ही है। और नाक पर लगाया हुआ चश्मा भी आंखकी मदद करनेको लगाया हुआ यंत्र ही है। हल भी यंत्र है। और पानी खींचनेके पुरानेसे पुराने यंत्र भी शायद मानव-जीवनको सुधारनेकी मनुष्यकी हजारों बरसकी लगातार कोशिशके आखिरी फल होंगे। . . . किसी भी यंत्रका बुरा उपयोग होनेकी संभावना रहती ही है। लेकिन अगर ऐसा हो तो उसमें रही हुई नैतिक हीनता यंत्रकी नहीं, लेकिन उसका उपयोग करनेवाले मनुष्यकी है।'

मुझे इतना तो कबूल करना चाहिये कि गांधीजीने 'अपने विचारोंके जोशमें' यंत्रोंके बारेमें अनगढ़ भाषा इस्तेमाल की है और आज अगर वे इस पुस्तकको फिरसे सुधारने बैठें तो उस भाषाको वे खुद बदल देंगे। क्योंकि मुझे यकीन है कि मैंने ऊपर समालोचकोंके जो कथन दिये हैं, उनको गांधीजी स्वीकार करेंगे; और जो नैतिक गुण यंत्रका इस्तेमाल करनेवालेमें रहे हैं, उन गुणोंको उन्होंने यंत्रके गुण कभी नहीं माना। मिसालके तौर पर, १९२४ में उन्होंने जो भाषा इस्तेमाल की थी, वह ऊपर दिये हुए दो कथनोंकी याद दिलाती है। उस साल दिल्लीमें गांधीजीका एक भाईके साथ जो संवाद[2] हुआ था, वह मैं नीचे देता हूं:

'क्या आप तमाम यंत्रोंके खिलाफ़ हैं?' रामचन्द्रन्ने सरल भावसे पूछा।

गांधीजीने मुस्कराते हुए कहा: 'वैसा मैं कैसे हो सकता हूं, जब मैं जानता हूं कि यह शरीर भी एक बहुत नाजुक यंत्र ही है? खुद

---

१. बिलावजह। २. बातचीत।

चरखा भी एक यंत्र ही है, छोटी दांत-कुरेदनी[1] भी यंत्र है। मेरा विरोध यंत्रोंके लिए नहीं है, बल्कि यंत्रोंके पीछे जो पागलपन आज चल रहा है उसके लिए है। आज तो जिन्हें मेहनत बचानेवाले यंत्र कहते हैं, उनके पीछे लोग पागल हो गये हैं। उनसे मेहनत जरूर बचती है, लेकिन लाखों लोग बेकार होकर भूखों मरते हुए रास्तों पर भटकते हैं। समय और श्रमकी बचत तो मैं भी चाहता हूं, परन्तु वह किसी खास वर्गकी नहीं, बल्कि सारी मानव-जातिकी होनी चाहिये। कुछ गिने-गिनाये लोगोंके पास संपत्ति जमा हो ऐसा नहीं, बल्कि सबके पास जमा हो ऐसा मैं चाहता हूं। आज तो करोड़ोंकी गरदन पर कुछ लोगोंके सवार हो जानेमें यंत्र मददगार हो रहे हैं। यंत्रोंके उपयोगके पीछे जो प्रेरक कारण है वह श्रमकी बचत नहीं है, बल्कि धनका लोभ है। आजकी इस चालू अर्थ-व्यवस्थाके खिलाफ़ मैं अपनी तमाम ताक़त लगाकर युद्ध चला रहा हूं।'

रामचन्द्रन्‌ने आतुरतासे पूछा: 'तब तो, बापूजी, आपका झगड़ा यंत्रोंके खिलाफ़ नहीं, बल्कि आज यंत्रोंका जो बुरा उपयोग हो रहा है उसके खिलाफ़ है?'

'जरा भी आनाकानी किये बिना मैं कहता हूं कि 'हां'। लेकिन मैं इतना जोड़ना चाहता हूं कि सबसे पहले यंत्रोंकी खोज और विज्ञान लोभके साधन नहीं रहने चाहिये। फिर मजदूरोंसे उनकी ताक़तसे ज्यादा काम नहीं लिया जायगा और यंत्र रुकावट बननेके बजाय मददगार हो जायेंगे। मेरा उद्देश्य[2] तमाम यंत्रोंका नाश करनेका नहीं है, बल्कि उनकी हद बांधनेका है।'

रामचन्द्रन्‌ने कहा: 'इस दलीलको आगे बढ़ायें तो उसका मतलब यह होता है कि भौतिक[3] शक्तिसे चलनेवाले और भारी पेचीदा तमाम यंत्रोंका त्याग करना चाहिये।'

गांधीजीने मंजूर करते हुए कहा: 'त्याग करना भी पड़े। लेकिन एक बात मैं साफ करना चाहूंगा। हम जो कुछ करें उसमें मुख्य विचार इन्सानके भलेका होना चाहिये। ऐसे यंत्र नहीं होने चाहिये जो काम

१. खरका। २. मक़सद। ३. दुनियवी।

न रहनेके कारण आदमीके अंगोंको जड़ और वेकार वना दें। इसलिए यंत्रोंको मुझे परखना होगा। जैसे, सिंगरकी सीनेकी मशीनका मैं स्वागत करूंगा। आजकी सब खोजोंमें जो बहुत कामकी थोड़ी खोजें हैं, उनमें से एक यह सीनेकी मशीन है। उसकी खोजके पीछे अद्भुत इतिहास है। सिंगरने अपनी पत्नीको सीने और बखिया लगानेका उकतानेवाला काम करते देखा। पत्नीके प्रति रहे उसके प्रेमने गैर-ज़रूरी मेहनतसे उसे बचानेके लिए सिंगरको ऐसी मशीन बनानेकी प्रेरणा की। ऐसी खोज करके उसने न सिर्फ अपनी पत्नीका ही श्रम बचाया, बल्कि जो भी ऐसी सीनेकी मशीन ख़रीद सकते हैं उन सबको हाथसे सीनेके ऊबानेवाले श्रमसे छुड़ाया है।'

रामचन्द्रन्‌ने कहा: 'लेकिन सिंगरकी सीनेकी मशीनें बनानेके लिए तो बड़ा कारखाना चाहिये और उसमें भौतिक शक्तिसे चलनेवाले यंत्रोंका उपयोग करना ही पड़ेगा।'

रामचन्द्रन्‌के इस विरोधमें सिर्फ ज्यादा जाननेकी इच्छा ही थी। गांधीजीने मुस्कराते हुए कहा: 'हां, लेकिन मैं इतना कहनेकी हद तक समाजवादी तो हूं ही कि ऐसे कारखानोंका मालिक राष्ट्र हो या जनताकी सरकारकी ओरसे ऐसे कारखाने चलाये जायें। उनकी हस्ती नफेके लिए नहीं बल्कि लोगोंके भलेके लिए हो। लोभकी जगह प्रेमको कायम करनेका उसका उद्देश्य हो। मैं तो यह चाहता हूं कि मजदूरोंकी हालतमें कुछ सुधार हो। धनके पीछे आज जो पागल दौड़ चल रही है वह रुकनी चाहिये। मजदूरोंको सिर्फ अच्छी रोजी मिले, इतना ही बस नहीं है। उनसे हो सके ऐसा काम उन्हें रोज मिलना चाहिये। ऐसी हालतमें यंत्र जितना सरकारको या उसके मालिकको लाभ पहुंचायेगा, उतना ही लाभ उसके चलानेवाले मजदूरको पहुंचायेगा। मेरी कल्पनामें यंत्रोंके बारेमें जो कुछ अपवाद हैं, उनमें से एक यह है। सिंगर मशीनके पीछे प्रेम था, इसलिए मानव-सुखका विचार मुख्य[1] था। उस यंत्रका उद्देश्य है मानव-श्रमकी बचत। उसका इस्तेमाल करनेके पीछे मक़सद धनके लोभका नहीं होना चाहिये, बल्कि प्रामाणिक रीतिसे[2] दयाका होना

१. खास। २. ईमानदारीसे।

चाहिये। मसलन्, टेढ़े तकुवेको सीधा बनानेवाले यंत्रका मैं बहुत स्वागत करूंगा। लेकिन लुहारोंका तकुवे बनानेका काम ही खतम हो जाय, यह मेरा उद्देश्य नहीं हो सकता। जब तकुवा टेढ़ा हो जाय तब हरएक कातनेवालेके पास तकुवा सीधा कर लेनेके लिए यंत्र हो, इतना ही मैं चाहता हूं। इसलिए लोभकी जगह हम प्रेमको दें। तब फिर सब अच्छा ही अच्छा होगा।'

मुझे नहीं लगता कि ऊपरके संवादमें गांधीजीने जो कहा है, उसके बारेमें इन आलोचकोंमें से किसीका सिद्धान्त[1] की दृष्टिसे विरोध हो। देहकी तरह यंत्र भी, अगर वह आत्माके विकासमें मदद करता हो तो, और जितनी हद तक मदद करता हो उतनी हद तक ही, उपयोगी है।

पश्चिमकी सभ्यताके बारेमें भी ऐसा ही है। 'पश्चिमकी सभ्यता मनुष्यकी आत्माकी महाशत्रु है'— इस कथनका विरोध करते हुए मि० कोल लिखते हैं: 'मैं कहता हूं कि स्पेन और एबिसीनियाके भयंकर संहार,[2] हमारे सिर पर हमेशा लटकनेवाला भय, सब तरहकी रिद्धि-सिद्धि पैदा करनेकी शक्ति मौजूद होने पर भी करोड़ोंका दारिद्र्य, ये सब पश्चिमकी सभ्यताके दूषण[3] हैं, गंभीर दूषण हैं। लेकिन वे कुदरती नहीं हैं, सभ्यताकी जड़ नहीं हैं। . . . मैं यह नहीं कहता कि हम अपनी इस सभ्यताको सुधारेंगे; लेकिन वह सुधर ही नहीं सकती, ऐसा मैं नहीं मानता। जो चीजें मानवकी आत्माके लिए जरूरी हैं, उनके साफ इनकार पर उस सभ्यताकी रचना हुई है ऐसा मैं नहीं मानता।' बिलकुल सही बात है। और गांधीजीने उस सभ्यताके जो दूषण बताये वे कुदरती नहीं थे, बल्कि उस सभ्यताकी प्रवृत्तियोंमें रहे हुए दूषण थे; और इस पुस्तकमें गांधीजीका मक़सद भारतीय सभ्यताकी प्रवृत्तियां पश्चिमकी सभ्यताकी प्रवृत्तियोंसे कितनी भिन्न हैं यही दिखानेका था। पश्चिमकी सभ्यताको सुधारना नामुमकिन नहीं है, मि० कोलकी इस बातसे गांधीजी पूरी तरह सहमत[4] होंगे; उनको यह भी मंजूर होगा कि पश्चिमको पश्चिमके ढंगका ही स्वराज्य चाहिये; वे आसानीसे यह भी स्वीकार

---

१. उसूल। २. कत्ल। ३. खराबियां। ४. हमराय।

करेंगे कि वह स्वराज्य 'गांधी जैसे आत्म-निग्रहवाले[1] पुरुषोंके विचारके अनुसार तो होगा, लेकिन वे पुरुष हमारे पश्चिमके ढंगके होंगे; और वह ढंग गांधी या हिन्दुस्तानका नहीं, पश्चिमका अपना निराला ही ढंग होगा।'

सिद्धान्तकी मर्यादा

अध्यापक कोलने नीचेकी उलझन सामने रखी है:

'जब जर्मन और इटालियन विमानी स्पेनकी प्रजाका संहार कर रहे हों, जब जापानके विमानी चीनके शहरोंमें हजारों लोगोंको कत्ल कर रहे हों, जब जर्मन सेनाएं आस्ट्रियामें घुस चुकी हों और चेकोस्लोवाकियामें घुस जानेकी धमकियां दे रही हों, जब एबिसीनिया पर बम बरसाकर उसे जीत लिया गया हो, तब आजके ऐसे समयमें क्या यह (अहिंसाका) सिद्धान्त टिक सकेगा? दो-एक बरस पहले मैं तमाम संजोगोंमें युद्धका और मृत्युकारी हिंसाका विरोध करता था। लेकिन आज, युद्धके बारेमें मेरे दिलमें नापसन्दगी और नफरत होने पर भी, इन कत्लेआमों — हत्याकांडोंको रोकनेके लिए मैं युद्धका खतरा जरूर उठाऊंगा।'

उनके मनमें एक-दूसरेके विरोधी ये विचार कैसा सख्त संघर्ष मचा रहे हैं, यह नीचेकी सतरोंसे जाहिर होता है। वे कहते हैं:

'मैं युद्धका खतरा जरूर उठाऊंगा, परन्तु अभी भी मेरा वह दूसरा व्यक्तित्व[2] इन्सानकी हत्या करनेके विचारसे घबराकर, चोट खाकर पीछे हटता है। मैं खुद तो दूसरेकी जान लेनेके बजाय अपनी जान देना ज्यादा पसन्द करूंगा। लेकिन अमुक संजोगोंमें खुद मर-मिटनेके बजाय दूसरेकी जान लेनेकी कोशिश करना क्या मेरा फ़र्ज नहीं होगा? गांधी शायद जवाब देंगे कि जिसने व्यक्तिगत[3] स्वराज्य पाया है, उसके सामने ऐसा धर्म-

१. खुद पर काबू रखनेवाले। २. शख्सियत। ३. अपना।

संकट[1] पैदा ही नहीं होगा। ऐसा व्यक्तिगत स्वराज्य मैंने पाया है, यह मेरा दावा नहीं है। लेकिन ख़याल कीजिये कि मैंने ऐसा स्वराज्य पा लिया है, तो भी उससे पश्चिम यूरोपमें आजके समय मेरे लिए यह सवाल कुछ कम ज़ोरदार हो जायेगा ऐसा मुझे विश्वास नहीं होता।'

मि० कोलने जो संजोग बताये हैं, वे मनुष्यकी श्रद्धा[2] की कसौटी ज़रूर करते हैं। लेकिन इसका जवाब गांधीजी अनेक बार दे चुके हैं, हालांकि उन्होंने अपना व्यक्तिगत स्वराज्य पूरी तरह पाया नहीं है; क्योंकि जब तक दूसरे देशबन्धुओंने स्वराज्य नहीं पाया है, तब तक वे अपने पाये हुए स्वराज्यको अधूरा ही मानते हैं। लेकिन वे श्रद्धाके साथ जीते हैं और अहिंसाके बारेमें उनकी जो श्रद्धा है वह इटली या जापानके किये हुए कत्लेआमोंकी बात सुनते ही डगमगाने नहीं लगती। क्योंकि हिंसामें से हिंसाके ही नतीजे पैदा होते हैं; और एक बार उस रास्ते पर जा पहुंचे कि फिर उसका कोई अन्त ही नहीं आता। 'चीनका पक्ष लेकर आपको लड़ना चाहिये'—ऐसा कहनेवाले एक चीनी मित्रको जवाब देते हुए 'वार रेजिस्टर' नामक पत्रमें फिलिप ममफर्डने लिखा है:

'आपकी शत्रु तो जापानकी सरकार है; जापानके किसान और सैनिक आपके दुश्मन नहीं हैं। उन अभागे और अनपढ़ लोगोंको तो मालूम भी नहीं कि उन्हें क्यों लड़नेका हुक्म किया जाता है। फिर भी, अगर आप अपने देशके बचावके लिए मौजूदा लश्करी तरीकोंका उपयोग करेंगे, तो आपको इन बेकसूर लोगोंको ही—जो आपके सच्चे दुश्मन नहीं हैं उन्हींको—मारना पड़ेगा। अहिंसाकी जो रीति गांधीजीने हिन्दुस्तानमें आजमाई, उसीके ज़रिये अगर चीन अपनी रक्षा करनेकी कोशिश करेगा—और गांधीजीकी वह रीति चीनके महान धर्म-गुरुओंके उपदेशसे बहुत ज्यादा मेल खाती है—तो मैं बेधड़क कहूंगा कि यूरोपके शस्त्रयुद्धकी रीतिकी

---

१. पसोपेश, दुविधा। २. अक़ीदा।

नकल करनेके वजाय इस अहिंसाकी रीतिसे उसे वहुत ज्यादा सफलता मिलेगी। . . . चीनकी जनता, जो जगतकी सवसे ज्यादा शांतिप्रिय प्रजा है, जगतकी किसी भी लड़ाकू प्रजाके वनिस्वत ज्यादा लंवे अरसे तक अपनेको और अपनी संस्कृतिको कायम रख सकी है, यह हकीकत ही मानव-जातिके लिए एक सवक है। जो शूरवीर चीनी अपने देशके वचावके लिए लड़ रहे हैं, उनके लिए हमें आदर नहीं है ऐसा आप न मानें। हम उनके त्याग और वलिदानकी भारी कदर करते हैं और समझते हैं कि वे हमसे भिन्न सिद्धान्तोंमें माननेवाले हैं। फिर भी हम तो मानते हैं कि हिंसा सव संजोगोंमें वुरी है और उसमें से अच्छे फल निकलना असंभव है। अहिंसाका पालन आपको तमाम दुखोंसे उवार तो नहीं लेगा, लेकिन मैं मानता हूं कि आपके सव शस्त्र-अस्त्रों और लश्करोंके वनिस्वत अहिंसा एक अरसेके वाद आपके भावी विजेताके खिलाफ़ ज्यादा असरकारक सावित होगी; और सवसे ज्यादा महत्त्वकी[1] वात तो यह है कि इससे आपकी प्रजाके आदर्श जीवित रहेंगे।'

कुमारी रैथवोनने ऐसी ही एक समस्या[2] रखी है। वे लिखती हैं: 'जालिमके सामने सिर झुकाकर और अपनी अंदरकी आवाजके विरुद्ध चलकर अगर छोटे मुलायम वच्चों और वच्चियोंको वचाया जा सकता हो, तो इस दुनियामें ऐसा कौन आदमी — सामान्य या संतपुरुष — है, जो उनकी हत्या होने देगा? गांधी इस सवालका कोई जवाव नहीं देते। उन्होंने यह सवाल उठाया तक नहीं है। . . . इस वारेमें ईसा मसीहका कहना ज्यादा स्पष्ट[3] है। . . . उनके शब्द ये हैं: मुझ पर श्रद्धा रखनेवाले इन नन्हें मुन्नोंके खिलाफ़ जो कोई हाथ उठाये, उसके गलेमें चक्कीका पाट लटकाकर उसे समुद्रके पानीमें डुवो दिया जाय। . . . यों हमें इस वारेमें गांधीजीके वनिस्वत ईसा मसीहकी ओरसे ज्यादा मदद मिलती है। . . .'

मुझे लगता है, ईसा मसीहके वचन सिर्फ उनका पुण्य-प्रकोप[4] प्रकट करते हैं, और उन्होंने जो कदम उठानेकी वात कही है, वह

---

१. अहम। २. मसला, पहेली। ३. साफ़। ४. पाक गुस्सा।

गुनहगारोंको कोई और आदमी सजा करे इसलिए नहीं, बल्कि गुनहगार खुद अपनेको प्रायश्चित्त[1] के तौर पर सजा दे इसलिए है। और क्या कुमारी रैथबोनको पक्का यकीन है कि जिसे वे ईसाका उपाय मानती हैं, उसे आजमाकर वे बालकोंको मौतसे बचा सकेंगी? गांधीजीने यह सवाल उठाया ही नहीं है, ऐसा उनका मानना सही नहीं है। उन्होंने यह सवाल उठाया है और उसका साफ़ साफ़ जवाब भी दिया है; जैसे १३०० बरस पहले उन अमर मुस्लिम शहीदोंने भी यह सवाल उठाया था और अपने कामसे उसका जवाब दिया था। जालिमके सामने झुकने और अपनी अंतर-आत्माको धोखा देनेके बजाय अपने बीबी-बच्चोंको भूख-प्याससे तड़पते हुए मरने देना ही उन्होंने ज्यादा पसन्द किया था; क्योंकि जालिमके सामने झुकने और अपनी अंतर-आत्माको धोखा देनेका परिणाम यही होता है कि जालिमको नये नये जुल्म गुजारनेका बढ़ावा मिलता है।

लेकिन कुमारी रैथबोनने भी 'हिन्द स्वराज्य' को 'बहुत भारी असरकारक पुस्तक' कहा है और लिखा है कि 'उसे पढ़कर, उसमें रही भारी प्रामाणिकता[2] को देखकर, अपनी प्रामाणिकताकी जांच करना मेरे लिए ज़रूरी हो गया है। लोगोंसे मेरी विनती है कि वे इस पुस्तकको ज़रूर पढ़ें।'

'आर्यन पाथ' मासिकके संपादकोंने यह 'हिन्द स्वराज्य अंक' निकालकर शांति और अहिंसाके कार्यकी निर्विवाद[3] सेवा की है, ऐसा हमें कहना होगा।

महादेव हरिभाई देसाई

(अंग्रेजीके गुजराती अनुवाद परसे)

---

१. कफ़्फ़ारा। २. ईमानदारी। ३. खसूसन्, बेशक।

उपोद्‌घात

लॉर्ड लोथियन जब सेवाग्राम आये थे तब उन्होंने मुझसे 'हिन्द स्वराज्य' की नकल मांगी थी। उन्होंने कहा था: 'गांधीजी आजकल जो कुछ भी कह रहे हैं वह इस छोटीसी किताबमें बीजके रूपमें है, और गांधीजीको ठीकसे समझनेके लिए यह किताब बार-बार पढ़नी चाहिये।'

अचरजकी बात यह है कि उसी अरसेमें श्रीमती सोफिया वाड़ियाने 'हिन्द स्वराज्य' के बारेमें एक लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने हमारे सब मंत्रियोंसे, धारासभाके सदस्योंसे, गोरे और भारतीय सिविलियनोंसे, इतना ही नहीं, आजके लोक-शासनके अहिंसक प्रयोगकी सफलता चाहनेवाले हरएक नागरिकसे यह किताब बार-बार पढ़नेकी सिफारिश की थी। उन्होंने लिखा था: 'अहिंसक आदमी अपने ही घरमें तानाशाही कैसे चला सकता है? वह शराब कैसे बेच सकता है? अगर वह वकील हो तो अपने मुवक्किलको अदालतमें जाकर लड़नेकी सलाह कैसे दे सकता है? इन सारे सवालोंका जवाब देते समय बहुत ही महत्त्वके राजनीतिक सवालोंका विचार करना ज़रूरी हो जाता है। 'हिन्द स्वराज्य' में इन प्रश्नोंकी सिद्धान्तकी दृष्टिसे चर्चा की गई है। इसलिए वह पुस्तक लोगोंमें ज्यादा पढ़ी जानी चाहिये और उसमें जो कहा गया है उसके बारेमें लोकमत तैयार करना चाहिये।'

श्रीमती वाड़ियाकी विनती ठीक वक्त पर की गई है। १९०९ में गांधीजीने विलायतसे लौटते हुए जहाज पर यह पुस्तक लिखी थी। हिंसक साधनोंमें विश्वास रखनेवाले कुछ भारतीयोंके साथ जो चर्चाएं हुई थीं, उन परसे उन्होंने मूल पुस्तक गुजरातीमें लिखी थी और 'इण्डियन ओपीनियन' नामक साप्ताहिकमें सिलसिलेवार लेखोंमें उसे प्रगट किया गया था। बादमें उसे पुस्तकके रूपमें प्रगट किया गया और

बम्बई सरकारने उसे जब्त किया। गांधीजीने मि० कैलनबैकके लिए उस किताबका अंग्रेजीमें जो अनुवाद किया था, उसे बम्बई सरकारके हुक्मके जवाबके रूपमें प्रकाशित किया गया। गोखलेजी १९१२ में जब दक्षिण अफ्रीका गये तब उन्होंने वह अनुवाद देखा। उन्हें उसका मजमून इतना अनगढ़ लगा और उसके विचार ऐसे जल्दबाजीमें बने हुए लगे कि उन्होंने भविष्यवाणी की कि गांधीजी एक साल भारतमें रहनेके बाद खुद ही उस पुस्तकका नाश कर देंगे। गोखलेजीकी वह भविष्यवाणी सच नहीं निकली। १९२१ में गांधीजीने उस पुस्तकके बारेमें लिखते हुए कहा था:

'वह द्वेषधर्मकी जगह प्रेमधर्म सिखाती है; हिंसाकी जगह आत्मबलिदानको रखती है; पशुबलसे टक्कर लेनेके लिए आत्मबलको खड़ा करती है। उसमें से मैंने सिर्फ एक ही शब्द — और वह एक महिला मित्रकी इच्छाको मान कर — रद किया है। उसे छोड़कर कुछ भी फेरबदल नहीं किया है। इस किताबमें आधुनिक[1] सभ्यताकी सख्त टीका की गई है। यह १९०९ में लिखी गई थी। इसमें मैंने जो मान्यता प्रगट की है, वह आज पहलेसे ज्यादा मजबूत बनी है। . . . लेकिन मैं पाठकोंको एक चेतावनी देना चाहता हूं। वे ऐसा न मान लें कि इस किताबमें जिस स्वराज्यकी तसवीर मैंने खड़ी की है, वैसा स्वराज्य कायम करनेके लिए आज मेरी कोशिशें चल रही हैं। मैं जानता हूं कि अभी हिन्दुस्तान उसके लिए तैयार नहीं है। ऐसा कहनेमें शायद ढिठाईका भास हो, लेकिन मुझे तो पक्का विश्वास है। उसमें जिस स्वराज्यकी तसवीर मैंने खींची है, वैसा स्वराज्य पानेकी मेरी निजी कोशिश जरूर चल रही है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि आजकी मेरी सामूहिक[2] प्रवृत्तिका ध्येय तो हिन्दुस्तानकी प्रजाकी इच्छाके मुताबिक पार्लियामेन्टरी ढंगका स्वराज्य पाना है।'

१९३८ में भी गांधीजीको कुछ जगहों पर भाषा बदलनेके सिवा और कुछ फेरबदल करने जैसा नहीं लगा। इसलिए यह किताब किसी

१. आजकी। २. आम।

भी प्रकारकी काट-छांटके विना मूल रूपमें ही फिरसे प्रकाशित की जाती है।

लेकिन इसमें वताये हुए स्वराज्यके लिए हिन्दुस्तान तैयार हो या न हो, हिन्दुस्तानियोंके लिए यही उत्तम[1] है कि वे इस वीजरूप ग्रंथका अध्ययन करें। सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तोंके स्वीकारसे अंतमें क्या नतीजा आयेगा, उसकी तसवीर इसमें है। इसे पढ़कर उन सिद्धान्तोंको स्वीकार करना चाहिये या उनका त्याग, यह तो पाठक ही तय करें।

वर्धा, २–२–'३८

महादेव हरिभाई देसाई

(अंग्रेजीके गुजराती अनुवाद परसे)

---

१. सवसे अच्छा।

सन्देश*

जिन सिद्धान्तोंके समर्थन[1] के लिए 'हिन्द स्वराज्य' लिखी गयी थी, उन सिद्धान्तोंकी आप जाहिरात करना चाहती हैं, यह मुझे अच्छा लगता है। मूल पुस्तक गुजरातीमें लिखी गई थी; अंग्रेजी आवृत्ति[2] गुजरातीका तरजुमा है। यह पुस्तक अगर आज मुझे फिरसे लिखनी हो, तो कहीं कहीं मैं उसकी भाषा बदलूंगा। लेकिन इसे लिखनेके बाद जो तीस साल मैंने अनेक आंधियोंमें विताये हैं, उनमें मुझे इस पुस्तकमें बताये हुए विचारोंमें फेरबदल करनेका कुछ भी कारण नहीं मिला। पाठक इतना खयालमें रखें कि कुछ कार्यकर्ताओंके साथ, जिनमें एक कट्टर अराजकतावादी[3] थे, मेरी जो बातें हुई थीं, वे जैसीकी तैसी मैंने इस पुस्तकमें दे दी हैं। पाठक इतना भी जान लें कि दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंमें जो सड़न दाखिल होनेवाली ही थी, उसे इस पुस्तकने रोका था। इसके विरुद्ध दूसरे पल्लेमें रखनेके लिए पाठक मेरे एक स्वर्गीय मित्रकी यह राय भी जान लें कि 'यह एक मूर्ख आदमीकी रचना है।'

सेवाग्राम, १४–७–'३८

मोहनदास करमचंद गांधी

(अंग्रेजीके गुजराती अनुवाद परसे)

---

* अंग्रेजी मासिक 'आर्यन पाथ' के सितम्बर, १९३८ में प्रगट हुए 'हिन्द स्वराज्य अंक' के लिए भेजा हुआ संदेश।

१. ताईद। २. एडिशन। ३. एनार्किस्ट।

‘हिन्द स्वराज्य’ के बारेमें

मेरी इस छोटीसी किताबकी ओर विशाल जनसंख्याका ध्यान खिंच रहा है, यह सचमुच ही मेरा सौभाग्य है। यह मूल तो गुजरातीमें लिखी गई है। इसका जीवन-क्रम अजीब है। यह पहले-पहल दक्षिण अफ्रीकामें छपनेवाले साप्ताहिक ‘इण्डियन ओपीनियन’में प्रगट हुई थी। १९०९ में लन्दनसे दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए जहाज पर हिन्दुस्तानियोंके हिंसावादी पंथको और उसी विचारधारावाले दक्षिण अफ्रीकाके एक वर्गको दिये गये जवाबके रूपमें यह लिखी गई थी। लन्दनमें रहनेवाले हरएक नामी अराजकतावादी हिन्दुस्तानीके संपर्कमें मैं आया था। उनकी शूरवीरता[1] का असर मेरे मन पर पड़ा था, लेकिन मुझे लगा कि उनके जोशने उलटी राह पकड़ ली है। मुझे लगा कि हिंसा हिन्दुस्तानके दुखोंका इलाज नहीं है, और उसकी संस्कृति[2] को देखते हुए उसे आत्म-रक्षा[3] के लिए कोई अलग और ऊंचे प्रकारका शस्त्र काममें लाना चाहिये। दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह उस वक्त मुश्किलसे दो सालका बच्चा था। लेकिन उसका विकास इतना हो चुका था कि उसके बारेमें कुछ हद तक आत्म-विश्वाससे लिखनेकी मैंने हिम्मत की थी। मेरी वह लेख-माला पाठक-वर्गको इतनी पसन्द आयी कि वह किताबके रूपमें प्रकाशित की गई। हिन्दुस्तानमें उसकी ओर लोगोंका कुछ ध्यान गया। बम्बई सरकारने उसके प्रचारकी मनाही कर दी। उसका जवाब मैंने किताबका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करके दिया। मुझे लगा कि अपने अंग्रेज मित्रोंको इस किताबके विचारोंसे वाकिफ़ करना उनके प्रति[4] मेरा फ़र्ज है।

मेरी रायमें यह किताब ऐसी है कि यह बालकके हाथमें भी दी जा सकती है। यह द्वेषधर्मकी जगह प्रेमधर्म सिखाती है; हिंसाकी जगह आत्म-बलिदानको रखती है; पशुबलसे टक्कर लेनेके लिए आत्मबलको खड़ा करती है। इसकी अनेक आवृत्तियां हो चुकी हैं; और जिन्हें इसे

---

१. बहादुरी। २. तमद्दुन। ३. अपना बचाव। ४. तरफ़।

पढ़नेकी परवाह है उनसे इसे पढ़नेकी मैं जरूर सिफ़ारिश करूंगा। इसमें से मैंने सिर्फ एक ही शब्द—और वह एक महिला मित्रकी इच्छाको मानकर—रद किया है; इसके सिवा और कोई फेरबदल मैंने इसमें नहीं किया है।

इस कितावमें 'आधुनिक सभ्यता' की सख्त टीका की गई है। यह १९०९ में लिखी गई थी। इसमें मेरी जो मान्यता प्रगट की गई है, वह आज पहलेसे ज्यादा मजबूत बनी है। मुझे लगता है कि अगर हिन्दुस्तान 'आधुनिक सभ्यता' का त्याग करेगा, तो उससे उसे लाभ ही होगा।

लेकिन मैं पाठकोंको एक चेतावनी देना चाहता हूं। वे ऐसा न मान लें कि इस कितावमें जिस स्वराज्यकी तसवीर मैंने खड़ी की है, वैसा स्वराज्य कायम करनेके लिए आज मेरी कोशिशें चल रही हैं। मैं जानता हूं कि अभी हिन्दुस्तान उसके लिए तैयार नहीं है। ऐसा कहनेमें शायद ढिठाईका भास हो, लेकिन मुझे तो पक्का विश्वास है कि इसमें जिस स्वराज्यकी तसवीर मैंने खींची है, वैसा स्वराज्य पानेकी मेरी निजी कोशिश जरूर चल रही है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि आज मेरी सामूहिक[1] प्रवृत्तिका ध्येय तो हिन्दुस्तानकी प्रजाकी इच्छाके मुताबिक पार्लियामेन्टरी ढंगका स्वराज्य पाना है। रेलों या अस्पतालोंका नाश करनेका ध्येय मेरे मनमें नहीं है, अगरचे उनका कुदरती नाश हो तो म जरूर उसका स्वागत करूंगा। रेल या अस्पताल दोनोंमें से एक भी ऊंची और बिलकुल शुद्ध संस्कृतिकी सूचक (चिह्न) नहीं है। ज्यादासे ज्यादा इतना ही कह सकते हैं कि यह एक ऐसी बुराई है, जो टाली नहीं जा सकती। दोनोंमें से एक भी हमारे राष्ट्रकी नैतिक ऊंचाईमें एक इंचकी भी बढ़ती नहीं करती। उसी तरह मैं अदालतोंके स्थायी[2] नाशका ध्येय मनमें नहीं रखता, हालांकि ऐसा नतीजा आये तो मुझे अवश्य बहुत अच्छा लगेगा। यंत्रों और मिलोंके नाशके लिए तो मैं उससे भी कम कोशिश करता हूं। उसके लिए लोगोंकी आज जो तैयारी है उससे कहीं ज्यादा सादगी और त्यागकी जरूरत रहती है।

---

१. आम। २. कायमी।

इस पुस्तकमें बताये हुए कार्यक्रम[1] के एक ही हिस्सेका आज अमल हो रहा है; वह है अहिंसा। लेकिन मैं अफ़सोसके साथ कबूल करूंगा कि उसका अमल भी इस पुस्तकमें दिखाई हुई भावनासे नहीं हो रहा है। अगर हो तो हिन्दुस्तान एक ही रोजमें स्वराज्य पा जाय। हिन्दुस्तान अगर प्रेमके सिद्धान्तको अपने धर्मके एक सक्रिय[2] अंशके रूपमें स्वीकार करे और उसे अपनी राजनीतिमें शामिल करे, तो स्वराज्य स्वर्गसे हिन्दुस्तानकी धरती पर उतरेगा। लेकिन मुझे दुखके साथ इस बातका भान है कि ऐसा होना बहुत दूरकी बात है।

ये वाक्य मैं इसलिए लिख रहा हूं कि आजके आन्दोलन[3] को बदनाम करनेके लिए इस पुस्तकमें से बहुतसी बातोंका हवाला दिया जाता मैंने देखा है। मैंने इस मतलबके लेख भी देखे हैं कि मैं कोई गहरी चाल चल रहा हूं, आजकी उथल-पुथलसे लाभ उठाकर अपने अजीब खयाल भारतके सिर लादनेकी कोशिश कर रहा हूं और हिन्दुस्तानको नुकसान पहुंचाकर अपने धार्मिक प्रयोग कर रहा हूं। इसका मेरे पास यही जवाब है कि सत्याग्रह ऐसी कोई कच्ची खोखली चीज नहीं है। उसमें कुछ भी दुराव-छिपाव नहीं है, उसमें कुछ भी गुप्तता नहीं है। 'हिन्द स्वराज्य' में बताये हुए संपूर्ण जीवन-सिद्धान्तके एक भागको आचरणमें लानेकी कोशिश हो रही है, इसमें कोई शक नहीं। ऐसा नहीं कि उस समूचे सिद्धान्तका अमल करनमें जोखिम है; लेकिन आज देशके सामने जो प्रश्न[4] है उसके साथ जिन हिस्सोंका कोई सम्बन्ध नहीं है ऐसे हिस्से मेरे लेखोंमें से देकर लोगोंको भड़कानेमें न्याय हरगिज नहीं है।

जनवरी, १९२१

मोहनदास करमचंद गांधी

('यंग इंडिया' के गुजराती अनुवाद परसे)

---

१. प्रोग्राम। २. अमली। ३. तहरीक। ४. सवाल।

प्रस्तावना

इस विषय[1] पर मैंने जो बीस अध्याय[2] लिखे हैं, उन्हें पाठकोंके सामने रखनेकी मैं हिम्मत करता हूं।

जब मुझसे रहा ही नहीं गया तभी मैंने यह लिखा है। बहुत पढ़ा, बहुत सोचा। विलायतमें ट्रान्सवाल डेप्युटेशनके साथ मैं चार माह रहा, उस बीच हो सका उतने हिन्दुस्तानियोंके साथ मैंने सोच-विचार किया, हो सका उतने अंग्रेजोंसे भी मैं मिला। अपने जो विचार मुझे आखिरी मालूम हुए, उन्हें पाठकोंके सामने रखना मैंने अपना फ़र्ज समझा।

'इण्डियन ओपीनियन' के गुजराती ग्राहक आठ सौके करीब हैं। हर ग्राहकके पीछे कमसे कम दस आदमी दिलचस्पीसे यह अखबार पढ़ते हैं, ऐसा मैंने महसूस किया है। जो गुजराती नहीं जानते, वे दूसरोंसे पढ़वाते हैं। इन भाइयोंने हिन्दुस्तानकी हालतके बारेमें मुझसे बहुत सवाल किये हैं। ऐसे ही सवाल मुझसे विलायतमें किये गये थे। इसलिए मुझे लगा कि जो विचार मैंने यों खानगीमें बताये, उन्हें सबके सामने रखना गलत नहीं होगा।

जो विचार यहां रखे गये हैं, वे मेरे हैं और मेरे नहीं भी हैं। वे मेरे हैं, क्योंकि उनके मुताबिक बरतनेकी मैं उम्मीद रखता हूं; वे मेरी आत्मामें गढ़े-जड़े हुए जैसे हैं। वे मेरे नहीं हैं, क्योंकि सिर्फ मैंने ही उन्हें सोचा हो सो बात नहीं। कुछ किताबें पढ़नेके बाद वे बने हैं। दिलमें भीतर ही भीतर मैं जो महसूस करता था, उसका इन किताबोंने समर्थन[3] किया।

यह साबित करनेकी जरूरत नहीं कि जो विचार मैं पाठकोंके सामने रखता हूं, वे हिन्दुस्तानमें जिन पर (पश्चिमी) सभ्यताकी धुन सवार नहीं हुई है ऐसे बहुतेरे हिन्दुस्तानियोंके हैं। लेकिन यही विचार यूरोपके

---

१. मसला। २. बाब। ३. ताईद।

हजारों लोगोंके हैं, यह मैं अपने पाठकोंके मनमें अपने सबूतोंसे ही जंचाना चाहता हूं। जिसे इसकी खोज करनी हो, जिसे ऐसी फ़ुरसत हो, वह आदमी वे किताबें देख सकता है। अपनी फ़ुरसतसे उन किताबोंमें से कुछ न कुछ पाठकोंके सामने रखनेकी मेरी उम्मीद है।

'इण्डियन ओपीनियन' के पाठकों या औरोंके मनमें मेरे लेख पढ़कर जो विचार आयें, उन्हें अगर वे मुझे बतायेंगे तो मैं उनका आभारी रहूंगा।

उद्देश्य[1] सिर्फ देशकी सेवा करनेका और सत्यकी खोज करनेका और उसके मुताबिक बरतनेका है। इसलिए अगर मेरे विचार गलत साबित हों, तो उन्हें पकड़ रखनेका मेरा आग्रह नहीं है। अगर वे सच साबित हों तो दूसरे लोग भी उनके मुताबिक बरतें, ऐसी देशके भलेके लिए साधारण तौर पर मेरी भावना रहेगी।

सुभीतेके लिए लेखोंको पाठक और संपादकके बीचके संवादका रूप दिया गया है।

किलडोनन कैसल,
२२-११-१९०९

मोहनदास करमचंद गांधी

---

१. मक़सद।

अनुक्रमणिका

१

कांग्रेस और उसके कर्ता-धर्ता

पाठक : आजकल हिन्दुस्तानमें स्वराज्यकी हवा चल रही है। सब हिन्दुस्तानी आजाद होनेके लिए तरस रहे हैं। दक्षिण अफ्रीकामें भी वही जोश दिखाई दे रहा है। हिन्दुस्तानियोंमें अपने हक पानेकी बड़ी हिम्मत आई हुई मालूम होती है। इस बारेमें क्या आप अपने ख़याल बतायेंगे?

संपादक : आपने सवाल ठीक पूछा है। लेकिन इसका जवाब देना आसान बात नहीं है। अखबारका एक काम तो है लोगोंकी भावनायें जानना और उन्हें जाहिर करना; दूसरा काम है लोगोंमें अमुक जरूरी भावनायें पैदा करना; और तीसरा काम है लोगोंमें दोष हों तो चाहे जितनी मुसीबतें आने पर भी बेधड़क होकर उन्हें दिखाना। आपके सवालका जवाब देनेमें ये तीनों काम साथ-साथ आ जाते हैं। लोगोंकी भावनायें कुछ हद तक बतानी होंगी, न हों वैसी भावनायें उनमें पैदा करनेकी कोशिश करनी होगी और उनके दोषोंकी निंदा भी करनी होगी। फिर भी आपने सवाल किया है, इसलिए उसका जवाब देना मेरा फ़र्ज मालूम होता है।

पाठक : क्या स्वराज्यकी भावना हिन्दमें पैदा हुई आप देखते हैं?

संपादक : वह तो जबसे नेशनल कांग्रेस कायम हुई तभीसे देखनेमें आई है। 'नेशनल' शब्दका अर्थ ही वह विचार जाहिर करता है।

पाठक : यह तो आपने ठीक नहीं कहा। नौजवान हिन्दुस्तानी आज कांग्रेसकी परवाह ही नहीं करते। वे तो उसे अंग्रेजोंका राज्य निभानेका साधन[1] मानते हैं।

संपादक : नौजवानोंका ऐसा ख़याल ठीक नहीं है। हिन्दके दादा दादाभाई नौरोजीने जमीन तैयार नहीं की होती, तो नौजवान आज जो

१. औजार, जरिया।

बातें कर रहे हैं वह भी नहीं कर पाते। मि० ह्यूमने जो लेख लिखे, जो फटकारें हमें सुनाईं, जिस जोशसे हमें जगाया, उसे कैसे भुलाया जाय? सर विलियम वेडरबर्नने कांग्रेसका मकसद हासिल करनेके लिए अपना तन, मन और धन सब दे दिया था। उन्होंने अंग्रेजी राज्यके बारेमें जो लेख लिखे हैं, वे आज भी पढ़ने लायक हैं। प्रोफेसर गोखलेने जनताको तैयार करनेके लिए, भिखारीके जैसी हालतमें रहकर, अपने बीस साल दिये हैं। आज भी वे गरीबीमें रहते हैं। मरहूम जस्टिस बदरुद्दीनने भी कांग्रेसके ज़रिये स्वराज्यका बीज बोया था। यों बंगाल, मद्रास, पंजाब वगैरामें कांग्रेसका और हिन्दका भला चाहनेवाले कई हिन्दुस्तानी और अंग्रेज लोग हो गये हैं, यह याद रखना चाहिये।

पाठक: ठहरिये, ठहरिये। आप तो बहुत आगे बढ़ गये। मेरा सवाल कुछ है और आप जवाब कुछ और दे रहे हैं। मैं स्वराज्यकी बात करता हूं और आप परराज्यकी बात करते हैं। मुझे अंग्रेजोंका नाम तक नहीं चाहिये और आप तो अंग्रेजोंके नाम देने लगे। इस तरह तो हमारी गाड़ी राह पर आये, ऐसा नहीं दीखता। मुझे तो स्वराज्यकी ही बातें अच्छी लगती हैं। दूसरी मीठी सयानी बातोंसे मुझे संतोष नहीं होगा।

संपादक: आप अधीर हो गये हैं। मैं अधीरपन बरदाश्त नहीं कर सकता। आप जरा सब्र करेंगे तो आपको जो चाहिये वही मिलेगा। 'उतावलीसे आम नहीं पकते, दाल नहीं चुरती'— यह कहावत याद रखिये। आपने मुझे रोका और आपको हिन्द पर उपकार करनेवालोंकी बात भी सुननी अच्छी नहीं लगती, यह बताता है कि अभी आपके लिए स्वराज्य दूर है। आपके जैसे बहुतसे हिन्दुस्तानी हों, तो हम (स्वराज्यसे) दूर हट कर पिछड़ जायेंगे। यह बात जरा सोचने लायक है।

पाठक: मुझे तो लगता है कि ये गोल-मोल बातें बनाकर आप मेरे सवालका जवाब उड़ा देना चाहते हैं। आप जिन्हें हिन्दुस्तान पर उपकार करनेवाले मानते हैं, उन्हें मैं ऐसा नहीं मानता; फिर मुझे किसके उपकारकी बात सुननी है? आप जिन्हें हिन्दके दादा कहते हैं, उन्होंने

क्या उपकार किया? वे तो कहते हैं कि अंग्रेज राजकर्ता न्याय करेंगे और उनसे हमें हिलमिल कर रहना चाहिये।

संपादक: मुझे सविनय[1] आपसे कहना चाहिये कि उस पुरुषके बारेमें आपका बेअदबीसे यों बोलना हमारे लिए शरमकी बात है। उनके कामोंकी ओर देखिये। उन्होंने अपना जीवन हिन्दको अर्पण[2] कर दिया है। उनसे यह सबक हमने सीखा। हिन्दका खून अंग्रेजोंने चूस लिया है, यह सिखानेवाले माननीय दादाभाई हैं। आज उन्हें अंग्रेजों पर भरोसा है उससे क्या? हम जवानीके जोशमें एक कदम आगे रखते हैं, इसमें क्या दादाभाई कम पूज्य हो जाते हैं? इससे क्या हम ज्यादा ज्ञानी हो गये? जिस सीढ़ीसे हम ऊपर चढ़े उसको लात न मारनेमें ही बुद्धिमानी[3] है। अगर वह सीढ़ी निकाल दें तो सारी निसैनी गिर जाय, यह हमें याद रखना चाहिये। हम बचपनसे जवानीमें आते हैं तब बचपनसे नफरत नहीं करते, बल्कि उन दिनोंको प्यारसे याद करते हैं। बरसों तक अगर मुझे कोई पढ़ाता है और उससे मेरी जानकारी जरा बढ़ जाती है, तो इससे मैं अपने शिक्षक[4] से ज्यादा ज्ञानी नहीं माना जाऊंगा; अपने शिक्षकको तो मुझे मान[5] देना ही पड़ेगा। इसी तरह हिन्दके दादाके बारेमें समझना चाहिये। उनके पीछे (सारी) हिन्दुस्तानी जनता है, यह तो हमें कहना ही पड़ेगा।

पाठक: यह आपने ठीक कहा। दादाभाई नौरोजीकी इज्जत करना चाहिये, यह तो समझ सकते हैं। उन्होंने और उनके जैसे दूसरे पुरुषोंने जो काम किये हैं, उनके बगैर हम आजका जोश महसूस नहीं कर पाते, यह बात ठीक लगती है। लेकिन यही बात प्रोफेसर गोखले साहबके बारेमें हम कैसे मान सकते हैं? वे तो अंग्रेजोंके बड़े भाईबंद बन कर बैठे हैं; वे तो कहते हैं कि अंग्रेजोंसे हमें बहुत कुछ सीखना है। अंग्रेजोंकी राजनीतिसे हम वाकिफ़ हो जायं, तभी स्वराज्यकी बातचीत की जाय। उन साहबके भाषणोंसे तो मैं ऊब गया हूं।

---

१. अदबसे। २. नजर। ३. अक़्लमंदी। ४. उस्ताद। ५. इज्जत।

संपादक : आप ऊब गये हैं, यह दिखाता है कि आपका मिज़ाज उतावला है। लेकिन जो नौजवान अपने मां-बापके ठंडे मिज़ाजसे ऊब जाते हैं और वे (मां-बाप) अगर अपने साथ न दौड़ें तो गुस्सा होते हैं, वे अपने मां-बापका अनादर[1] करते हैं ऐसा हम समझते हैं। प्रोफेसर गोखलेके बारेमें भी ऐसा ही समझना चाहिये। क्या हुआ अगर प्रोफेसर गोखले हमारे साथ नहीं दौड़ते हैं? स्वराज्य भुगतनेकी इच्छा रखनेवाली प्रजा अपने बुजुर्गोंका तिरस्कार[2] नहीं कर सकती। अगर दूसरेकी इज़्ज़त करनेकी आदत हम खो बैठें, तो हम निकम्मे हो जायेंगे। जो प्रौढ़[3] और तजरबेकार हैं, वे ही स्वराज्य भुगत सकते हैं, न कि बे-लगाम लोग। और देखिये कि जब प्रोफेसर गोखलेने हिन्दुस्तानकी शिक्षा[4]के लिए त्याग किया तब ऐसे कितने हिन्दुस्तानी थे? मैं तो खास तौर पर मानता हूं कि प्रोफेसर गोखले जो कुछ भी करते हैं वह शुद्ध भावसे और हिन्दुस्तानका हित मानकर करते हैं। हिन्दके लिए अगर अपनी जान भी देनी पड़े तो वे दे देंगे, ऐसी हिन्दके लिए उनकी भक्ति है। वे जो कुछ कहते हैं वह किसीकी खुशामद करनेके लिए नहीं, बल्कि सही मानकर कहते हैं। इसलिए हमारे मनमें उनके लिए पूज्य भाव होना चाहिये।

पाठक : तो क्या वे साहब जो कहते हैं उसके मुताबिक हमें भी करना चाहिये?

संपादक : मैं ऐसा कुछ नहीं कहता। अगर हम शुद्ध बुद्धिसे अलग राय रखते हैं, तो उस रायके मुताबिक चलनेकी सलाह खुद प्रोफेसर साहब हमें देंगे। हमारा मुख्य काम तो यह है कि हम उनके कामोंकी निन्दा न करें; हमसे वे महान हैं ऐसा मानें और यकीन रखें कि उनके मुकाबिलेमें हमने हिन्दके लिए कुछ भी नहीं किया है। उनके बारेमें कुछ अखबार जो अशिष्टतापूर्वक[5] लिखते हैं उसकी हमें निन्दा करनी चाहिये और प्रोफेसर गोखले जैसोंको हमें स्वराज्यके स्तंभ[6] मानना चाहिये।

---

१. बेअदबी। २. बेइज़्ज़ती, नफ़रत। ३. पुख्ता। ४. तालीम। ५. बेअदबीसे। ६. खंभ।

उनके ख़याल गलत और हमारे ही सही हैं, या हमारे ख़यालोंके मुताबिक न बरतनेवाले देशके दुश्मन हैं, ऐसा मान लेना बुरी भावना है।

पाठक : आप जो कुछ कहते हैं वह अब मेरी समझमें कुछ आता है। फिर भी मुझे उसके बारेमें सोचना होगा। पर मि० ह्यूम, सर विलियम वेडरबर्न वगैराके बारेमें आपने जो कहा उसमें तो हद हो गई।

संपादक : जो नियम हिन्दुस्तानियोंके बारेमें है, वही अंग्रेजोंके बारेमें समझना चाहिये। सारेके सारे अंग्रेज बुरे हैं, ऐसा तो मैं नहीं मानूंगा। बहुतसे अंग्रेज चाहते हैं कि हिन्दुस्तानको स्वराज्य मिले। उस प्रजामें स्वार्थ ज्यादा है यह ठीक है, लेकिन उससे हरएक अंग्रेज बुरा है ऐसा साबित नहीं होता। जो हक — न्याय[1] — चाहते हैं, उन्हें सबके साथ न्याय करना होगा। सर विलियम हिन्दुस्तानका बुरा चाहनेवाले नहीं हैं, इतना हमारे लिए काफी है। ज्यों ज्यों हम आगे बढ़ेंगे त्यों त्यों आप देखेंगे कि अगर हम न्यायकी भावनासे काम लेंगे, तो हिन्दुस्तानका छुटकारा जल्दी होगा। आप यह भी देखेंगे कि अगर हम तमाम अंग्रेजोंसे द्वेष[2] करेंगे, तो उससे स्वराज्य दूर ही जानेवाला है; लेकिन अगर उनके साथ भी न्याय करेंगे, तो स्वराज्यके लिए हमें उनकी मदद मिलेगी।

पाठक : अभी तो ये सब मुझे फ़िज़ूलकी बड़ी बड़ी बातें लगती हैं। अंग्रेजोंकी मदद मिले और उससे स्वराज्य मिल जाय, ये तो आपने दो उलटी बातें कहीं। लेकिन इस सवालका हल अभी मुझे नहीं चाहिये। उसमें समय बिताना बेकार है। स्वराज्य कैसे मिलेगा, यह जब आप बतायेंगे तब शायद आपके विचार मैं समझ सकूं तो समझ सकूं। फिलहाल तो अंग्रेजोंकी मददकी आपकी बातने मुझे शंकामें डाल दिया है और आपके विचारोंके ख़िलाफ़ मुझे भरमा दिया है। इसलिए यह बात आप आगे न बढ़ायें तो अच्छा हो।

संपादक : मैं अंग्रेजोंकी बातको बढ़ाना नहीं चाहता। आप शंकामें पड़ गये, इसकी कोई फिकर नहीं। मुझे जो महत्त्वकी[3] बात कहनी

---

१. इन्साफ़। २. नफ़रत। ३. अहम।

है, उसे पहलेसे ही बता देना ठीक होगा। आपकी शंकाको धीरजसे दूर करना मेरा फर्ज़ है।

पाठक : आपकी यह बात मुझे पसन्द आयी। इससे मुझे जो ठीक लगे वह बात कहनेकी मुझमें हिम्मत आई है। अभी मेरी एक शंका रह गई है। कांग्रेसके आरम्भसे स्वराज्यकी नींव पड़ी, यह कैसे कहा जा सकता है?

संपादक : देखिये, कांग्रेसने अलग अलग जगहों पर हिन्दुस्तानियोंको इकट्ठा करके उनमें 'हम एक-राष्ट्र हैं' ऐसा जोश पैदा किया। कांग्रेस पर सरकारकी कड़ी नजर रहती थी। महसूलका हक प्रजाको होना चाहिये, ऐसी मांग कांग्रेसने हमेशा की है। जैसा स्वराज्य कैनेडामें है वैसा स्वराज्य कांग्रेसने हमेशा चाहा है। वैसा स्वराज्य मिलेगा या नहीं मिलेगा, वैसा स्वराज्य हमें चाहिये या नहीं चाहिये, उससे बढ़कर दूसरा कोई स्वराज्य है या नहीं, यह सवाल अलग है। मुझे दिखाना तो इतना ही है कि कांग्रेसने हिन्दको स्वराज्यका रस चखाया। इसका जस कोई और लेना चाहे तो वह ठीक न होगा, और हम भी ऐसा मानें तो बेकदर[1] ठहरेंगे। इतना ही नहीं, बल्कि जो मकसद हम हासिल करना चाहते हैं उसमें मुसीबतें पैदा होंगी। कांग्रेसको अलग समझने और स्वराज्यके खिलाफ माननेसे हम उसका उपयोग नहीं कर सकते।

२

वंग-भंग

पाठक: आप कहते हैं उस तरह विचार करने पर यह ठीक लगता है कि कांग्रेसने स्वराज्यकी नींव डाली। लेकिन यह तो आप मानेंगे कि वह सही जागृति[1] नहीं थी। सही जागृति कब और कैसे हुई?

संपादक: बीज हमेशा हमें दिखाई नहीं देता। वह अपना काम जमीनके नीचे करता है और जब खुद मिट जाता है तब पेड़ जमीनके ऊपर देखनेमें आता है। कांग्रेसके बारेमें ऐसा ही समझिये। जिसे आप सही जागृति मानते हैं वह तो वंग-भंगसे हुई, जिसके लिए हम लॉर्ड कर्ज़नके आभारी हैं। वंग-भंगके वक्त बंगालियोंने कर्ज़न साहबसे बहुत प्रार्थना की, लेकिन वे साहब अपनी सत्ताके मदमें लापरवाह रहे। उन्होंने मान लिया कि हिन्दुस्तानी लोग सिर्फ बकवास ही करेंगे, उनसे कुछ भी नहीं होगा। उन्होंने अपमानभरी भाषाका उपयोग किया और जबरदस्ती बंगालके टुकड़े किये। हम यह मान सकते हैं कि उस दिनसे अंग्रेजी राज्यके भी टुकड़े हुए। वंग-भंगसे जो धक्का अंग्रेजी हुकूमतको लगा, वैसा और किसी कामसे नहीं लगा। इसका मतलब यह नहीं कि जो दूसरे गैर-इन्साफ़ हुए, वे वंग-भंगसे कुछ कम थे। नमक-महसूल कुछ कम गैर-इन्साफ़ नहीं है। ऐसा और तो आगे हम बहुत देखेंगे। लेकिन बंगालके टुकड़े करनेका विरोध[2] करनेके लिए प्रजा तैयार थी। उस वक्त प्रजाकी भावना बहुत तेज थी। उस समय बंगालके बहुतेरे नेता अपना सब कुछ न्योछावर करनेको तैयार थे। अपनी सत्ता, अपनी ताक़तको वे जानते थे। इसलिए तुरन्त आग भड़क उठी। अब वह बुझनेवाली नहीं है, उसे बुझानेकी जरूरत भी नहीं है। ये टुकड़े कायम नहीं रहेंगे, बंगाल फिर एक हो जायगा। लेकिन अंग्रेजी जहाजमें जो दरार पड़ी है, वह तो हमेशा रहेगी ही। वह दिन-ब-दिन चौड़ी होती जायगी।

---

१. जाग। २. मुख़ालिफ़त।

जागा हुआ हिन्द फिर सो जाय, यह नामुमकिन है। वंग-भंगको रद करनेकी मांग स्वराज्यकी मांगके बराबर है। बंगालके नेता यह बात खूब जानते हैं। अंग्रेजी हुकूमत भी यह बात समझती है। इसीलिए टुकड़े रद नहीं हुए। ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते हैं, त्यों त्यों प्रजा तैयार होती जाती है। प्रजा एक दिनमें नहीं बनती; उसे बननेमें कई बरस लग जाते हैं।

पाठक: वंग-भंगके नतीजे आपने क्या देखे?

संपादक: आज तक हम मानते आये हैं कि बादशाहसे अर्ज करना चाहिये और वैसा करने पर भी दाद न मिले तो दुःख सहन करना चाहिये; अलबत्ता, अर्ज तो करते ही रहना चाहिये। बंगालके टुकड़े होनेके बाद लोगोंने देखा कि हमारी अर्जके पीछे कुछ ताक़त चाहिये, लोगोंमें कष्ट सहन करनेकी शक्ति चाहिये। यह नया जोश टुकड़े होनेका अहम नतीजा माना जायगा। यह जोश अखबारोंके लेखोंमें दिखाई दिया। लेख कड़े होने लगे। जो बात लोग डरते हुए या चोरी-चुपके करते थे, वह खुल्लमखुल्ला होने लगी — लिखी जाने लगी। स्वदेशीका आन्दोलन[१] चला। अंग्रेजोंको देखकर छोटे-बड़े सब भागते थे, पर अब नहीं डरते; मार-पीटसे भी नहीं डरते; जेल जानेमें भी उन्हें कोई हर्ज नहीं मालूम होता; और हिन्दके पुत्ररत्न आज देशनिकाला भुगतते हुए (विदेशोंमें) विराजमान हैं। यह चीज उस अर्जसे अलग है। यों लोगोंमें खलबली मच रही है। बंगालकी हवा उत्तरमें पंजाब तक और (दक्षिणमें) मद्रास इलाकेमें कन्याकुमारी तक पहुंच गई है।

पाठक: इसके अलावा और कोई जानने लायक नतीजा आपको सूझता है?

संपादक: वंग-भंगसे जैसे अंग्रेजी जहाजमें दरार पड़ी है, वैसे ही हममें भी दरार — फूट — पड़ी है। बड़ी घटनाओंके परिणाम[२] भी यों बड़े ही होते हैं। हमारे नेताओंमें दो दल हो गये हैं: एक मॉडरेट और दूसरा एक्स्ट्रीमिस्ट। उनको हम 'धीमे' और 'उतावले' कह सकते हैं। ('नरम दल' व 'गरम दल' शब्द भी चलते हैं।) कोई मॉडरेटको डरपोक पक्ष और एक्स्ट्रीमिस्टको हिम्मतवाला पक्ष भी कहते हैं। सब

---

१. तहरीक। २. नतीजे।

अपने अपने ख़यालोंके मुताबिक इन दो शब्दोंका अर्थ करते हैं। यह सच है कि ये जो दो दल हुए हैं, उनके बीच जहर भी पैदा हुआ है। एक दल दूसरेका भरोसा नहीं करता, दोनों एक-दूसरेको ताना मारते हैं। सूरत कांग्रेसके समय करीब करीब मार-पीट भी हो गई। ये जो दो दल हुए हैं वह देशके लिए अच्छी निशानी[1] नहीं है, ऐसा मुझे तो लगता है। लेकिन मैं यह भी मानता हूं कि ऐसे दल लम्बे अरसे तक टिकेंगे नहीं। इस तरह कब तक ये दल रहेंगे, यह तो नेताओं पर आधार रखता है।

३

अशांति और असंतोष

पाठक: तो आपने बंग-भंगको जागृतिका कारण माना। उससे फैली हुई अशान्तिको ठीक समझा जाय या नहीं?

संपादक: इन्सान नींदमें से उठता है तो अंगड़ाई लेता है, इधर-उधर घूमता है और अशान्त[2] रहता है। उसे पूरा भान[3] आनेमें कुछ वक्त लगता है। उसी तरह अगरचे बंग-भंगसे जागृति आई है, फिर भी बेहोशी नहीं गई है। अभी हम अंगड़ाई लेनेकी हालतमें हैं। अभी अशान्तिकी हालत है। जैसे नींद और जागके बीचकी हालत जरूरी मानी जानी चाहिये और इसलिए वह ठीक कही जायगी, वैसे बंगालमें और उस कारणसे हिन्दुस्तानमें जो अशान्ति फैली है वह भी ठीक है। अशान्ति है यह हम जानते हैं, इसलिए शान्तिका समय आनेकी शक्यता[4] है। नींदसे उठनेके बाद हमेशा अंगड़ाई लेनेकी हालतमें हम नहीं रहते, लेकिन देर-सवेर अपनी शक्तिके मुताबिक पूरे जागते ही हैं। इसी तरह इस अशान्तिमें से हम जरूर छूटेंगे। अशान्ति किसीको नहीं भाती।

पाठक: अशान्तिका दूसरा रूप क्या है?

संपादक: अशान्ति असलमें असंतोष है। उसे आजकल हम 'अन-रेस्ट' कहते हैं। कांग्रेसके जमानेमें वह 'डिस्कन्टेन्ट' कहलाता था।

---

१. चिह्न। २. बेचैन। ३. सुध। ४. इमकान।

मि० ह्यूम हमेशा कहते थे कि हिन्दुस्तानमें असंतोष फैलानेकी ज़रूरत है। यह असंतोष बहुत उपयोगी चीज है। जब तक आदमी अपनी चालू हालतमें खुश रहता है, तब तक उसमें से निकलनेके लिए उसे समझाना मुश्किल है। इसलिए हरएक सुधारके पहले असंतोष होना ही चाहिये। चालू चीजसे ऊब जाने पर ही उसे फेंक देनेको मन करता है। ऐसा असंतोष हममें महान हिन्दुस्तानियोंकी और अंग्रेजोंकी पुस्तकें पढ़कर पैदा हुआ है। उस असंतोषसे अशान्ति पैदा हुई; और उस अशान्तिमें कई लोग मरे, कई बरबाद हुए, कई जेल गये, कईको देशनिकाला हुआ। आगे भी ऐसा होगा; और होना चाहिये। ये सब लक्षण[1] अच्छे माने जा सकते हैं। लेकिन इनका नतीजा बुरा भी आ सकता है।

४

स्वराज्य क्या है?

पाठक: कांग्रेसने हिन्दुस्तानको एक-राष्ट्र बनानेके लिए क्या किया, बंग-भंगसे जागृति कैसे हुई, अशान्ति और असंतोष कैसे फैले, यह सब जाना। अब मैं यह जानना चाहता हूं कि स्वराज्यके बारेमें आपके क्या ख़याल हैं। मुझे डर है कि शायद हमारी समझमें फ़रक हो।

संपादक: फ़रक होना मुमकिन है। स्वराज्यके लिए आप-हम सब अधीर बन रहे हैं, लेकिन वह क्या है इस बारेमें हम ठीक राय पर नहीं पहुंचे हैं। अंग्रेजोंको निकाल बाहर करना चाहिये, यह विचार बहुतोंके मुंहसे सुना जाता है; लेकिन उन्हें क्यों निकालना चाहिये, इसका कोई ठीक ख़याल किया गया हो ऐसा नहीं लगता। आपसे ही एक सवाल मैं पूछता हूं। मान लीजिये कि हम मांगते हैं उतना सब अंग्रेज हमें दे दें, तो फिर उन्हें (यहांसे) निकाल देनेकी जरूरत आप समझते हैं?

पाठक: मैं तो उनसे एक ही चीज मांगूंगा। वह है: मेहरबानी करके आप हमारे मुल्कसे चले जायें। यह मांग वे कबूल करें और हिन्दुस्तानसे

---

१. निशानियां।

चले जायं, तब भी अगर कोई ऐसा अर्थका अनर्थ[1] करें कि वे यहीं रहते हैं, तो मुझे उसकी परवाह नहीं होगी। तब फिर हम ऐसा मानेंगे कि हमारी भाषामें कुछ लोग 'जाना' का अर्थ 'रहना' करते हैं।

संपादक: अच्छा, हम मान लें कि हमारी मांगके मुताबिक अंग्रेज चले गये। उसके बाद आप क्या करेंगे?

पाठक: इस सवालका जवाब अभीसे दिया ही नहीं जा सकता। वे किस तरह जाते हैं, उस पर बादकी हालतका आधार रहेगा। मान लें कि आप कहते हैं उस तरह वे चले गये, तो मुझे लगता है कि उनका बनाया हुआ विधान[2] हम चालू रखेंगे और राजका कारोबार चलायेंगे। कहनेसे ही वे चले जायें तो हमारे पास लश्कर तैयार ही होगा, इसलिए हमें राजकाज चलानेमें कोई मुश्किल नहीं आयेगी।

संपादक: आप भले ही ऐसा मानें, लेकिन मैं नहीं मानूंगा। फिर भी मैं इस बात पर ज्यादा बहस नहीं करना चाहता। मुझे तो आपके सवालका जवाब देना है। वह जवाब मैं आपसे ही कुछ सवाल करके अच्छी तरह दे सकता हूं। इसलिए कुछ सवाल आपसे करता हूं। हम अंग्रेजोंको क्यों निकालना चाहते हैं?

पाठक: इसलिए कि उनके राज-कारोबारसे देश कंगाल होता जा रहा है। वे हर साल देशसे धन ले जाते हैं। वे अपनी ही चमड़ीके लोगोंको बड़े ओहदे देते हैं, हमें सिर्फ गुलामीमें रखते हैं, हमारे साथ बेअदबीका बरताव करते हैं और हमारी जरा भी परवाह नहीं करते।

संपादक: अगर वे धन बाहर न ले जायं, नम्र बन जायं और हमें बड़े ओहदे दें, तो उनके रहनेमें आपको कुछ हर्ज है?

पाठक: यह सवाल ही बेकार है। बाघ अपना रूप[3] पलट दे तो उसकी भाईबन्दीसे कोई नुकसान है? ऐसा सवाल आपने पूछा, यह सिर्फ वक्त बरबाद करनेके खातिर ही। अगर बाघ अपना स्वभाव[4] बदल सके, तो अंग्रेज लोग अपनी आदत छोड़ सकते हैं। जो कभी होनेवाला नहीं है वह होगा, ऐसा मानना मनुष्यकी रीत ही नहीं है।

१. सहीका ग़लत अर्थ। २. दस्तूर। ३. सूरत। ४. मिज़ाज।

संपादक : कैनेडाको जो राजसत्ता मिली है, बोअर लोगोंको जो राजसत्ता मिली है, वैसी ही हमें मिले तो?

पाठक : यह भी बेकार सवाल है। हमारे पास उनकी तरह गोला-बारूद हो तब वैसा जरूर हो सकता है। लेकिन उन लोगोंके जितनी सत्ता जब अंग्रेज हमें देंगे तब हम अपना ही झंडा रखेंगे। जैसा जापान वैसा हिन्दुस्तान। अपना जंगी बेड़ा, अपनी फौज और अपनी जाहोजलाली[1] होगी। और तभी हिन्दुस्तानका सारी दुनियामें बोलबाला होगा।

संपादक : यह तो आपने अच्छी तसवीर खींची। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें अंग्रेजी राज्य तो चाहिये, पर अंग्रेज (शासक) नहीं चाहिये। आप बाघका स्वभाव तो चाहते हैं, लेकिन बाघ नहीं चाहते। मतलब यही हुआ कि आप हिन्दुस्तानको अंग्रेज बनाना चाहते हैं। और हिन्दुस्तान जब अंग्रेज बन जायगा तब वह हिन्दुस्तान नहीं कहा जायगा, लेकिन सच्चा इंग्लिस्तान कहा जायगा। यह मेरी कल्पनाका स्वराज्य नहीं है।

पाठक : मैंने तो जैसा मुझे सूझता है वैसा स्वराज्य बतलाया। हम जो शिक्षा पाते हैं वह अगर कुछ कामकी हो, स्पेन्सर, मिल वगैरा महान लेखकोंके जो लेख हम पढ़ते हैं वे कुछ कामके हों, अंग्रेजोंकी पार्लियामेन्ट पार्लियामेन्टोंकी माता हो, तो फिर बेशक मुझे तो लगता है कि हमें उनकी नकल करनी चाहिये; वह यहां तक कि जैसे वे अपने मुल्कमें दूसरोंको घुसने नहीं देते वैसे हम भी दूसरोंको न घुसने दें। यों तो उन्होंने अपने देशमें जो किया है, वैसा और जगह अभी देखनेमें नहीं आता। इसलिए उसे तो हमें अपने देशमें अपनाना ही चाहिये। लेकिन अब आप अपने विचार बतलाइये।

संपादक : अभी देर है। मेरे विचार अपने आप इस चर्चामें आपको मालूम हो जायेंगे। स्वराज्यको समझना आपको जितना आसान लगता है उतना ही मुझे मुश्किल लगता है। इसलिए फिलहाल मैं आपको इतना ही समझानेकी कोशिश करूंगा कि जिसे आप स्वराज्य कहते हैं वह सचमुच स्वराज्य नहीं है।

---

१. समृद्धि, मालामाली।

५

इंग्लैंडकी हालत

पाठक : आप जो कहते हैं उस परसे तो मैं यही अंदाज लगाता हूं कि इंग्लैंडमें जो राज्य चलता है वह ठीक नहीं है और हमारे लायक नहीं है।

संपादक : आपका यह खयाल सही है। इंग्लैंडमें आज जो हालत है वह सचमुच दयनीय — तरस खाने लायक है। मैं तो भगवानसे यही मांगता हूं कि हिन्दुस्तानकी ऐसी हालत कभी न हो। जिसे आप पालियामेन्टोंकी माता कहते हैं, वह पालियामेन्ट तो बांझ और बेसवा[1] है। ये दोनों शब्द बहुत कड़े हैं, तो भी उसे अच्छी तरह लागू होते हैं। मैंने उसे बांझ कहा, क्योंकि अब तक उस पालियामेन्टने अपने आप एक भी अच्छा काम नहीं किया। अगर उस पर जोर — दबाव डालनेवाला कोई न हो तो वह कुछ भी न करे, ऐसी उसकी कुदरती हालत है। और वह बेसवा है, क्योंकि जो मंत्रि-मंडल उसे रखे उसके पास वह रहती है। आज उसका मालिक एस्क्विथ है, तो कल बालफर होगा और परसों कोई तीसरा।

पाठक : आपके बोलनेमें कुछ व्यंग्य[2] है। बांझ शब्दको अब तक आपने लागू नहीं किया। पालियामेन्ट लोगोंकी बनी है, इसलिए बेशक लोगोंके दबावसे ही वह काम करेगी। यही उसका गुण[3] है, उसके ऊपरका अंकुश[4] है।

संपादक : यह बड़ी गलत बात है। अगर पालियामेन्ट बांझ न हो तो इस तरह होना चाहिये — लोग उसमें अच्छेसे अच्छे मेम्बर चुनकर भेजते हैं। मेम्बर तनख्वाह नहीं लेते, इसलिए उन्हें लोगोंकी भलाईके लिए (पालियामेन्टमें) जाना चाहिये। लोग खुद सुशिक्षित-संस्कारी[5] माने जाते हैं, इसलिए उनसे भूल नहीं होती ऐसा हमें मानना चाहिये। ऐसी पालियामेन्टको अर्जीकी जरूरत नहीं होनी चाहिये, न दबावकी। उस

---

१. वेश्या। २. भेद। ३. सिफ़त। ४. क़ाबू। ५. तालीमयाफ़्ता।

पार्लियामेन्टका काम इतना सरल होना चाहिये कि दिन-ब-दिन उसका तेज बढ़ता जाय और लोगों पर उसका असर होता जाय। लेकिन इससे उलटे इतना तो सब कबूल करते हैं कि पार्लियामेन्टके मेम्बर दिखावटी और स्वार्थी[1] पाये जाते हैं। सब अपना मतलब साधनेकी सोचते हैं। सिर्फ डरके कारण ही पार्लियामेन्ट कुछ काम करती है। जो काम आज किया वह कल उसे रद करना पड़ता है। आज तक एक भी चीजको पार्लियामेन्टने ठिकाने लगाया हो ऐसी कोई मिसाल देखनेमें नहीं आती। बड़े सवालोंकी चर्चा जब पार्लियामेन्टमें चलती है, तब उसके मेम्बर पैर फैलाकर लेटते हैं या बैठे बैठे झपकियां लेते हैं। उस पार्लियामेन्टमें मेम्बर इतने जोरोंसे चिल्लाते हैं कि सुननेवाले हैरान-परेशान हो जाते हैं। उसके एक महान लेखकने उसे 'दुनियाकी बातूनी' जैसा नाम दिया है। मेम्बर जिस पक्ष[2] के हों उस पक्षके लिए अपना मत वे बगैर सोचे-विचारे देते हैं, देनेको बँधे हुए हैं। अगर कोई मेम्बर इसमें अपवादरूप[3] निकल आये, तो उसकी कमबख्ती ही समझिये। जितना समय और पैसा पार्लियामेन्ट खर्च करती है उतना समय और पैसा अगर अच्छे लोगोंको मिले तो प्रजाका उद्धार[4] हो जाय। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट महज प्रजाका खिलौना है और वह खिलौना प्रजाको भारी खर्चमें डालता है। ये विचार मेरे खुदके हैं ऐसा आप न मानें। बड़े और विचार-शील अंग्रेज ऐसा विचार रखते हैं। एक मेम्बरने तो यहां तक कहा है कि पार्लियामेन्ट धर्मिष्ठ[5] आदमीके लायक नहीं रही। दूसरे मेम्बरने कहा है कि पार्लियामेन्ट एक 'बच्चा' (बेबी) है। बच्चोंको कभी आपने हमेशा बच्चे ही रहते देखा है? आज सात सौ बरसके बाद भी अगर पार्लियामेन्ट बच्चा ही हो, तो वह बड़ी कब होगी?

पाठक : आपने मुझे सोचमें डाल दिया। यह सब मुझे तुरन्त मान लेना चाहिये, ऐसा तो आप नहीं कहेंगे। आप बिलकुल निराले विचार मेरे मनमें पैदा कर रहे हैं। मुझे उन्हें हजम करना होगा। अच्छा, अब 'वेसवा' शब्दका विवेचन[6] कीजिये।

१. खुदग़रज़। २. दल, पार्टी। ३. इस्तस्नाके तौर पर। ४. बेह-तर हालत। ५. दीनदार। ६. तफ़सीर।

संपादक: मेरे विचारोंको आप तुरन्त नहीं मान सकते, यह बात ठीक है। उसके बारेमें आपको जो साहित्य पढ़ना चाहिये वह आप पढ़ेंगे, तो आपको कुछ खयाल आयेगा। पालियामेन्टको मैंने वेसवा कहा, वह भी ठीक है। उसका कोई मालिक नहीं है। उसका कोई एक मालिक नहीं हो सकता। लेकिन मेरे कहनेका मतलब इतना ही नहीं है। जब कोई उसका मालिक बनता है—जैसे प्रधानमंत्री—तब भी उसकी चाल एक सरीखी नहीं रहती। जैसे बुरे हाल[1] वेसवाके होते हैं, वैसे ही सदा पालियामेन्टके होते हैं। प्रधानमंत्रीको पालियामेन्टकी थोड़ी ही परवाह रहती है। वह तो अपनी सत्ताके मदमें मस्त रहता है। अपना दल कैसे जीते इसीकी लगन उसे रहती है। पालियामेन्ट सही काम कैसे करे, इसका वह बहुत कम विचार करता है। अपने दलको बलवान बनानेके लिए प्रधानमंत्री पालियामेन्टसे कैसे कैसे काम करवाता है, इसकी मिसालें जितनी चाहिये उतनी मिल सकती हैं। यह सब सोचने लायक है।

पाठक: तब तो आज तक जिन्हें हम देशाभिमानी[2] और ईमानदार समझते आये हैं, उन पर भी आप टूट पड़ते हैं।

संपादक: हां, यह सच है। मुझे प्रधानमंत्रियोंसे द्वेष[3] नहीं है। लेकिन तजरबेसे मैंने देखा है कि वे सच्चे देशाभिमानी नहीं कहे जा सकते। जिसे हम घूस कहते हैं वह घूस वे खुल्लमखुल्ला नहीं लेते-देते, इसलिए भले ही वे ईमानदार कहे जायं। लेकिन उनके पास वसीला[4] काम कर सकता है। वे दूसरोंसे काम निकालनेके लिए उपाधि[5] वगैराकी घूस बहुत देते हैं। मैं हिम्मतके साथ कह सकता हूं कि उनमें शुद्ध भावना और सच्ची ईमानदारी नहीं होती।

पाठक: जब आपके ऐसे खयाल हैं तो जिन अंग्रेजोंके नामसे पालियामेन्ट राज करती है उनके बारेमें अब कुछ कहिये, ताकि उनके स्वराज्यका पूरा खयाल मुझे आ जाये।

संपादक: जो अंग्रेज 'वोटर' हैं (चुनाव करते हैं), उनकी धर्म-पुस्तक (बाइबल) तो हैं अखबार। वे अखबारोंसे अपने विचार बनाते

१. दुर्दशा। २. हुब्ब-उल-वतन। ३. वैर। ४. सिफ़ारिश। ५. इलकाब।

हैं। अखबार अप्रामाणिक[1] होते हैं, एक ही बातको दो शकलें देते हैं। एक दलवाले उसी बातको बड़ी बनाकर दिखलाते हैं, तो दूसरे दलवाले उसीको छोटी कर डालते हैं। एक अखबारवाला किसी अंग्रेज नेताको प्रामाणिक[2] मानेगा, तो दूसरा अखबारवाला उसको अप्रामाणिक मानेगा। जिस देशमें ऐसे अखबार हैं उस देशके आदमियोंकी कैसी दुर्दशा होगी?

पाठक: यह तो आप ही बताइये।

संपादक: उन लोगोंके विचार घड़ी-घड़ीमें बदलते हैं। उन लोगोंमें यह कहावत है कि सात सात बरसमें रंग बदलता है। घड़ीके लोलककी तरह वे इधर-उधर घूमा करते हैं। जमकर वे बैठ ही नहीं सकते। कोई दौर-दमामवाला आदमी हो और उसने अगर बड़ी बड़ी बातें कर दीं या दावतें दे दीं, तो वे नक्कारचीकी तरह उसीके ढोल पीटने लग जाते हैं। ऐसे लोगोंकी पार्लियामेन्ट भी ऐसी ही होती है। उनमें एक बात ज़रूर है। वह यह कि वे अपने देशको खोयेंगे नहीं। अगर किसीने उस पर बुरी नजर डाली, तो वे उसकी मिट्टी पलीद कर देंगे। लेकिन इससे उस प्रजामें सब गुण आ गये, या उस प्रजाकी नकल की जाय, ऐसा नहीं कह सकते। अगर हिन्दुस्तान अंग्रेज प्रजाकी नकल करे तो हिन्दुस्तान पामाल हो जाय, ऐसा मेरा पक्का खयाल है।

पाठक: अंग्रेज प्रजा ऐसी हो गई है, इसके आप क्या कारण मानते हैं?

संपादक: इसमें अंग्रेजोंका कोई खास क़सूर नहीं है, पर उनकी — बल्कि यूरोपकी — आजकलकी सभ्यताका क़सूर है। वह सभ्यता नुकसान-देह है और उससे यूरोपकी प्रजा पामाल होती जा रही है।

---

१. बेईमान। २. ईमानदार।

६

सभ्यताका दर्शन

पाठक : अब तो आपको सभ्यता[1] की भी बात करनी होगी। आपके हिसाबसे तो यह सभ्यता बिगाड़ करनेवाली है।

संपादक : मेरे हिसाबसे ही नहीं, बल्कि अंग्रेज लेखकोंके हिसाबसे भी यह सभ्यता बिगाड़ करनेवाली है। उसके बारेमें बहुत किताबें लिखी गई हैं। वहां इस सभ्यताके खिलाफ़ मंडल भी कायम हो रहे हैं। एक लेखकने 'सभ्यता, उसके कारण और उसकी दवा' नामकी किताब लिखी है। उसमें उनने यह साबित किया है कि यह सभ्यता एक तरहका रोग है।

पाठक : यह सब हम क्यों नहीं जानते?

संपादक : इसका कारण तो साफ है। कोई भी आदमी अपने खिलाफ़ जानेवाली बात करे ऐसा शायद ही होता है। आजकी सभ्यताके मोहमें फंसे हुए लोग उसके खिलाफ़ नहीं लिखेंगे, उलटे उसको सहारा मिले ऐसी ही बातें और दलीलें ढूंढ़ निकालेंगे। यह वे जान-बूझकर करते हैं, ऐसा भी नहीं है। वे जो लिखते हैं उसे खुद सच मानते हैं। नींदमें आदमी जो सपना देखता है, उसे वह सही मानता है। जब उसकी नींद खुलती है तभी उसे अपनी गलती मालूम होती है। ऐसी ही दशा सभ्यताके मोहमें फंसे हुए आदमीकी होती है। हम जो बातें पढ़ते हैं वे सभ्यताकी हिमायत करनेवालोंकी लिखी बातें होती हैं। उनमें बहुत होशियार और भले आदमी हैं। उनके लेखोंसे हम चौंधिया जाते हैं। यों एकके बाद दूसरा आदमी उसमें फंसता जाता है।

पाठक : यह बात आपने ठीक कही। अब आपने जो कुछ पढ़ा और सोचा है, उसका खयाल मुझे दीजिये।

संपादक : पहले तो हम यह सोचें कि सभ्यता किस हालतका नाम है। इस सभ्यताकी सही पहचान तो यह है कि लोग बाहरी (दुनिया) की

१. तहजीब।

खोजोंमें और शरीरके सुखमें धन्यता — सार्थकता[1] और पुरुषार्थ[2] मानते हैं। इसकी कुछ मिसालें लें। सौ साल पहले यूरोपके लोग जैसे घरोंमें रहते थे उनसे ज्यादा अच्छे घरोंमें आज वे रहते हैं; यह सभ्यताकी निशानी मानी जाती है। इसमें शरीरके सुखकी बात है। इसके पहले लोग चमड़ेके कपड़े पहनते थे और भालोंका इस्तेमाल करते थे। अब वे लंबे पतलून पहनते हैं और शरीरको सजानेके लिए तरह-तरहके कपड़े बनवाते हैं; और भालेके बदले एकके बाद एक पांच गोलियां छोड़ सके ऐसी चक्करवाली बन्दूक इस्तेमाल करते हैं। यह सभ्यताकी निशानी है। किसी मुल्कके लोग, जो जूते वगैरा नहीं पहनते हों, जब यूरोपके कपड़े पहनना सीखते हैं, तो जंगली हालतमें से सभ्य हालतमें आये हुए माने जाते हैं। पहले यूरोपमें लोग मामूली हलकी मददसे अपने लिएं जात-मेहनत करके ज़मीन जोतते थे। उसकी जगह आज भापके यंत्रोंसे हल चलाकर एक आदमी बहुत सारी ज़मीन जोत सकता है और बहुत-सा पैसा जमा कर सकता है। यह सभ्यताकी निशानी मानी जाती है। पहले लोग कुछ ही किताबें लिखते थे और वे अनमोल मानी जाती थीं। आज हर कोई चाहे जो लिखता है और छपवाता है और लोगोंके मनको भरमाता है। यह सभ्यताकी निशानी है। पहले लोग बैलगाड़ीसे रोज बारह कोसकी मंज़िल तय करते थे। आज रेलगाड़ीसे चार सौ कोसकी मंज़िल मारते हैं। यह तो सभ्यताकी चोटी[3] मानी गई है। यह सभ्यता जैसे जैसे आगे बढ़ती जाती है वैसे वैसे यह सोचा जाता है कि लोग हवाई जहाजसे सफ़र करेंगे और थोड़े ही घंटोंमें दुनियाके किसी भी भाग[4] में जा पहुंचेंगे। लोगोंको हाथ-पैर हिलानेकी ज़रूरत नहीं रहेगी। एक बटन दबाया कि आदमीके सामने पहननेकी पोशाक हाजिर हो जायगी, दूसरा बटन दबाया कि उसे अखबार मिल जायेंगे, तीसरा दबाया कि उसके लिए गाड़ी तैयार हो जायेगी; हर हमेशा नये भोजन मिलेंगे, हाथ-पैरका काम ही नहीं पड़ेगा, सारा काम कल[5] से ही किया जायगा। पहले जब लोग लड़ना चाहते थे तो एक-दूसरेका शरीर-बल आजमाते थे। आज तो तोपके एक गोलेसे हजारों

---

१. पुरअरमानी। २. बहादुरी, बड़ा काम। ३. शिखर। ४. हिस्सा। ५. यंत्र।

जानें ली जा सकती हैं। यह सभ्यताकी निशानी है। पहले लोग खुली हवामें अपनेको ठीक लगे उतना काम स्वतन्त्रतासे करते थे। अब हजारों आदमी अपने गुजारेके लिए इकट्ठा होकर बड़े कारखानोंमें या खानोंमें काम करते हैं। उनकी हालत जानवरसे भी बदतर हो गई है। उन्हें सीसे वगैराके कारखानोंमें जानको जोखिममें डालकर काम करना पड़ता है। इसका लाभ पैसेदार लोगोंको मिलता है। पहले लोगोंको मार-पीटकर गुलाम बनाया जाता था; आज लोगोंको पैसेका और भोग[1] का लालच देकर गुलाम बनाया जाता है। पहले जैसे रोग नहीं थे वैसे रोग आज लोगोंमें पैदा हो गये हैं और उसके साथ डॉक्टर खोज करने लगे हैं कि ये रोग कैसे मिटाये जायं। ऐसा करनेसे अस्पताल बढ़े हैं। यह सभ्यताकी निशानी मानी जाती है। पहले लोग पत्र लिखते थे तब खास क़ासिद उसे ले जाता था और उसके लिए काफी खर्च लगता था। आज मुझे किसीको गालियां देनेके लिए पत्र लिखना हो, तो एक पैसेमें मैं गालियां दे सकता हूं, किसीको मुझे मुबारकबाद देना हो तो भी मैं उसी दाममें पत्र भेज सकता हूं। यह सभ्यताकी निशानी है। पहले लोग दो या तीन बार खाते थे और वह भी खुद हाथसे पकाई हुई रोटी और थोड़ी तरकारी। अब तो हर दो घंटे पर खाना चाहिये, और वह यहां तक कि लोगोंको खानेसे फुरसत ही नहीं मिलती। और कितना कहूं? यह सब आप किसी भी पुस्तकमें पढ़ सकते हैं। ये सब सभ्यताकी सच्ची निशानियां मानी जाती हैं। और अगर कोई भी इससे भिन्न बात समझाये, तो वह भोला है ऐसा निश्चय[2] ही मानिये। सभ्यता तो मैंने जो बतायी वही मानी जाती है। उसमें नीति या धर्मकी बात ही नहीं है। सभ्यताके हिमायती साफ कहते हैं कि उनका काम लोगोंको धर्म सिखानेका नहीं है। धर्म तो ढोंग है, ऐसा कुछ लोग मानते हैं। और कुछ लोग धर्मका दम्भ करते हैं, नीतिकी बातें भी करते हैं। फिर भी मैं आपसे बीस बरसके अनुभव[3]के बाद कहता हूं कि नीतिके नामसे अनीति सिखाई जाती है। ऊपरकी बातोंमें नीति हो ही नहीं सकती, यह कोई बच्चा भी समझ सकता है। शरीरका सुख कैसे मिले, यही आजकी सभ्यता

१. मजा, आनन्द। २. अनुसन्। ३. तजरबा।

ढूंढ़ती है; और यही देनेकी वह कोशिश करती है। परन्तु वह सुख भी नहीं मिल पाता।

यह सभ्यता तो अधर्म है और यह यूरोपमें इतने दरजे तक फैल गयी है कि वहांके लोग आधे पागल जैसे देखनेमें आते हैं। उनमें सच्ची क़ूवत नहीं है; वे नशा करके अपनी ताक़त कायम रखते हैं। एकान्त[1]में वे बैठ ही नहीं सकते। जो स्त्रियां घरकी रानियां होनी चाहिये, उन्हें गलियोंमें भटकना पड़ता है, या कोई मजदूरी करनी पड़ती है। इंग्लैंडमें ही चालीस लाख गरीब औरतोंको पेटके लिए सख्त मजदूरी करनी पड़ती है, और आजकल इसके कारण 'सफ्रेजेट' का आन्दोलन[2] चल रहा है।

यह सभ्यता ऐसी है कि अगर हम धीरज धर कर बैठे रहेंगे, तो सभ्यताकी चपेटमें आये हुए लोग खुदकी जलायी हुई आगमें जल मरेंगे। पैगम्बर मोहम्मद साहबकी सीखके मुताबिक यह शैतानी सभ्यता है। हिन्दू धर्म इसे निरा 'कलजुग' कहता है। मैं आपके सामने इस सभ्यताका हूबहू चित्र नहीं खींच सकता। यह मेरी शक्तिके बाहर है। लेकिन आप समझ सकेंगे कि इस सभ्यताके कारण अंग्रेज प्रजामें सड़नने घर कर लिया है। यह सभ्यता दूसरोंका नाश करनेवाली और खुद नाशवान है। इससे दूर रहना चाहिये और इसीलिए ब्रिटिश और दूसरी पालियामेन्टें बेकार हो गई हैं। ब्रिटिश पालियामेन्ट अंग्रेज प्रजाकी गुलामीकी निशानी है, यह पक्की बात है। आप पढ़ेंगे और सोचेंगे तो आपको भी ऐसा ही लगेगा। इसमें आप अंग्रेजोंका दोष[3] न निकालें। उन पर तो हमें दया आनी चाहिये। वे काबिल प्रजा हैं इसलिए किसी दिन उस जालसे निकल जायेंगे ऐसा मैं मानता हूं। वे साहसी और मेहनती हैं। मूलमें उनके विचार अनीतिभरे नहीं हैं, इसलिए उनके बारेमें मेरे मनमें उत्तम[4] खयाल ही हैं। उनका दिल बुरा नहीं है। यह सभ्यता उनके लिए कोई अमिट रोग नहीं है। लेकिन अभी वे उस रोगमें फंसे हुए हैं, यह तो हमें भूलना ही नहीं चाहिये।

---

१. तनहाई। २. तहरीक। ३. क़सूर। ४. बहुत अच्छे।

७

हिन्दुस्तान कैसे गया?

पाठक : आपने सभ्यताके बारेमें बहुत कुछ कहा; और मुझे विचारमें डाल दिया। अब तो मैं इस संकट[1] में आ पड़ा हूं कि यूरोपकी प्रजासे मैं क्या लूं और क्या न लूं। लेकिन एक सवाल मेरे मनमें तुरन्त उठता है : अगर आजकी सभ्यता बिगाड़ करनेवाली है, एक रोग है, तो ऐसी सभ्यतामें फंसे हुए अंग्रेज हिन्दुस्तानको कैसे ले सके? इसमें वे कैसे रह सकते हैं?

संपादक : आपके इस सवालका जवाब अब कुछ आसानीसे दिया जा सकेगा और अब थोड़ी देरमें हम स्वराज्यके बारेमें भी विचार कर सकेंगे। आपके इस सवालका जवाब अभी देना बाकी है, यह मैं भूला नहीं हूं। लेकिन आपके आखिरी सवाल पर हम आयें। हिन्दुस्तान अंग्रेजोंने लिया सो बात नहीं है, बल्कि हमने उन्हें दिया है। हिन्दुस्तानमें वे अपने बलसे नहीं टिके हैं, बल्कि हमने उन्हें टिका रखा है। वह कैसे सो देखें। आपको मैं याद दिलाता हूं कि हमारे देशमें वे दरअसल व्यापारके लिए आये थे। आप अपनी कंपनी बहादुरको याद कीजिये। उसे बहादुर किसने बनाया? वे बेचारे तो राज करनेका इरादा भी नहीं रखते थे। कंपनीके लोगोंकी मदद किसने की? उनकी चांदीको देखकर कौन मोहमें पड़ जाता था? उनका माल कौन बेचता था? इतिहास[2] सबूत देता है कि यह सब हम ही करते थे। जल्दी पैसा पानेके मतलबसे हम उनका स्वागत करते थे। हम उनकी मदद करते थे। मुझे भांग पीनेकी आदत हो और भांग बेचनेवाला मुझे भांग बेचे, तो क़सूर बेचनेवालेका निकालना चाहिये या अपना खुदका? बेचनेवालेका क़सूर निकालनेसे मेरा व्यसन[3] थोड़े ही मिटनेवाला है? एक बेचनेवालेको भगा देंगे तो क्या दूसरे मुझे भांग नहीं बेचेंगे? हिन्दुस्तानके सच्चे सेवकको अच्छी तरह खोज करके इसकी जड़ तक पहुंचना होगा। ज्यादा खानेसे अगर मुझे अजीर्ण[4] हुआ हो, तो मैं

१. पसोपेश, दुविधा। २. तवारीख। ३. लत, कुटेव। ४. बदहजमी।

पानीका दोष निकाल कर अजीर्ण दूर नहीं कर सकूंगा। सच्चा डॉक्टर तो वह है जो रोगकी जड़ खोजे। आप अगर हिन्दुस्तानके रोगके डॉक्टर होना चाहते हैं, तो आपको रोगकी जड़ खोजनी ही पड़ेगी।

पाठक: आप सच कहते हैं। अब मुझे समझानेके लिए आपको दलील करनेकी ज़रूरत नहीं रहेगी। मैं आपके विचार जाननेके लिए अधीर बन गया हूं। अब हम बहुत ही दिलचस्प विषय[1] पर आ गये हैं, इसलिए मुझे आप अपने ही विचार बतायें। जब उनके बारेमें शंका पैदा होगी तब मैं आपको रोकूंगा।

संपादक: बहुत अच्छा। पर मुझे डर है कि आगे चलने पर हमारे बीच फिरसे मतभेद ज़रूर होगा। फिर भी जब आप मुझे रोकेंगे तभी मैं दलीलमें उतरूंगा। हमने देखा कि अंग्रेज व्यापारियोंको हमने बढ़ावा दिया तभी वे हिन्दुस्तानमें अपने पैर फैला सके। वैसे ही जब हमारे राजा लोग आपसमें झगड़े तब उन्होंने कंपनी बहादुरसे मदद मांगी। कंपनी बहादुर व्यापार और लड़ाईके काममें कुशल[2] थी। उसमें उसे नीति-अनीतिकी अड़चन नहीं थी। व्यापार बढ़ाना और पैसा कमाना, यही उसका धंधा था। उसमें जब हमने मदद दी तब उसने हमारी मदद ली और अपनी कोठियां बढ़ाईं। कोठियोंका बचाव करनेके लिए उसने लश्कर रखा। उस लश्करका हमने उपयोग किया, इसलिए अब उसे दोष देना बेकार है। उस वक्त हिन्दू-मुसलमानोंके बीच वैर था। कंपनीको उससे मौका मिला। इस तरह हमने कंपनीके लिए ऐसे संजोग पैदा किये, जिससे हिन्दुस्तान पर उसका अधिकार हो जाय। इसलिए हिन्दुस्तान गया ऐसा कहनेके बजाय ज्यादा सच यह कहना होगा कि हमने हिन्दुस्तान अंग्रेजोंको दिया।

पाठक: अब अंग्रेज हिन्दुस्तानको कैसे रख सकते हैं सो कहिये।

संपादक: जैसे हमने हिन्दुस्तान उन्हें दिया वैसे ही हम हिन्दुस्तानको उनके पास रहने देते हैं। उन्होंने तलवारसे हिन्दुस्तान लिया ऐसा उनमें से कुछ कहते हैं, और ऐसा भी कहते हैं कि तलवारसे वे उसे रख रहे हैं। ये दोनों बातें गलत हैं। हिन्दुस्तानको रखनेके लिए तलवार किसी काममें नहीं आ सकती; हम खुद ही उन्हें यहां रहने देते हैं।

---

१. बात। २. होशियार।

नेपोलियनने अंग्रेजोंको व्यापारी प्रजा कहा है। वह बिलकुल ठीक बात है। वे जिस देशको (अपने काबूमें) रखते हैं, उसे व्यापारके लिए रखते हैं, यह जानने लायक है। उनकी फ़ौजें और जंगी बेड़े सिर्फ व्यापारकी रक्षा[1] के लिए हैं। जब ट्रान्सवालमें व्यापारका लालच नहीं था तब मि० ग्लैडस्टनको तुरन्त सूझ गया कि ट्रान्सवाल अंग्रेजोंको नहीं रखना चाहिये। जब ट्रान्सवालमें व्यापारका आकर्षण देखा तब उससे लड़ाई की गई और मि० चेम्बरलेनने यह ढूंढ़ निकाला कि ट्रान्सवाल पर अंग्रेजोंकी हुकूमत है। मरहूम प्रेसिडेन्ट क्रूगरसे किसीने सवाल किया: 'चांदमें सोना है या नहीं?' उसने जवाब दिया: 'चांदमें सोना होनेकी संभावना नहीं है, क्योंकि सोना होता तो अंग्रेज अपने राजके साथ उसे जोड़ देते।' पैसा उनका खुदा है, यह ध्यानमें रखनेसे सब बातें साफ हो जायेंगी।

तब अंग्रेजोंको हम हिन्दुस्तानमें सिर्फ अपनी गरजसे रखते हैं। हमें उनका व्यापार पसन्द आता है। वे चालबाजी करके हमें रिझाते हैं और रिझाकर हमसे काम लेते हैं। इसमें उनका दोष निकालना उनकी सत्ताको निभाने जैसा है। इसके अलावा, हम आपसमें झगड़कर उन्हें ज्यादा बढ़ावा देते हैं।

अगर आप ऊपरकी बातको ठीक समझते हैं, तो हमने यह साबित कर दिया कि अंग्रेज व्यापारके लिए यहां आये, व्यापारके लिए यहां रहते हैं और उनके रहनेमें हम ही मददगार हैं। उनके हथियार तो बिलकुल बेकार हैं।

इस मौके पर मैं आपको याद दिलाता हूं कि जापानमें अंग्रेजी झंडा लहराता है ऐसा आप मानिये। जापानके साथ अंग्रेजोंने जो करार किया है वह अपने व्यापारके लिए किया है। और आप देखेंगे कि जापानमें अंग्रेज लोग अपना व्यापार खूब जमायेंगे। अंग्रेज अपने मालके लिए सारी दुनियाको अपना बाजार बनाना चाहते हैं। यह सच है कि ऐसा वे नहीं कर सकेंगे। इसमें उनका कोई क़सूर नहीं माना जा सकता। अपनी कोशिशमें वे कोई कसर नहीं रखेंगे।

---

१. रखवाली।

८

हिन्दुस्तानकी दशा – १

पाठक : हिन्दुस्तान अंग्रेजोंके हाथमें क्यों है, यह समझा जा सकता है। अब मैं हिन्दुस्तानकी हालतके बारेमें आपके विचार जानना चाहता हूं।

संपादक : आज हिन्दुस्तानकी रंक[1] दशा है। यह आपसे कहते हुए मेरी आंखोंमें पानी भर आता है और गला सूख जाता है। यह बात मैं आपको पूरी तरह समझा सकूंगा या नहीं, इस बारेमें मुझे शक है। मेरी पक्की राय है कि हिन्दुस्तान अंग्रेजोंसे नहीं, बल्कि आजकलकी सभ्यता[2]से कुचला जा रहा है, उसकी चपेटमें वह फंस गया है। उसमें से बचनेका अभी भी उपाय है, लेकिन दिन-ब-दिन समय बीतता जा रहा है। मुझे तो धर्म प्यारा है; इसलिए पहला दुःख मुझे यह है कि हिन्दुस्तान धर्मभ्रष्ट होता जा रहा है। धर्मका अर्थ मैं यहां हिन्दू, मुस्लिम या जरथोस्ती धर्म नहीं करता। लेकिन इन सब धर्मोंके अन्दर जो 'धर्म' है वह हिन्दुस्तानसे जा रहा है; हम ईश्वरसे विमुख[3] होते जा रहे हैं।

पाठक : सो कैसे?

संपादक : हिन्दुस्तान पर यह तोहमत है कि हम आलसी हैं और गोरे लोग मेहनती और उत्साही[4] हैं। इसे हमने मान लिया है। इसलिए हम अपनी हालतको बदलना चाहते हैं।

हिन्दू, मुस्लिम, जरथोस्ती, ईसाई सब धर्म सिखाते हैं कि हमें दुनियवी बातोंके बारेमें मंद[5] और धार्मिक[6] बातोंके बारेमें उत्साही रहना चाहिये। हमें अपने दुनियवी लोभकी हद बांधनी चाहिये और धार्मिक लोभको खुला छोड़ देना चाहिये। हमारा उत्साह[7] धार्मिक लोभमें ही रहना चाहिये।

पाठक : इससे तो मालूम होता है कि आप पाखंडी[8] बननेकी तालीम देते हैं। धर्मके बारेमें ऐसी बातें करके ठग लोग दुनियाको ठगते आये हैं और आज भी ठग रहे हैं।

---

१. कंगाल। २. तहजीब। ३. अलग। ४. पुरजोश। ५. सुस्त। ६. दीनी। ७. जोश। ८. ढोंगी।

संपादक: आप धर्म पर गलत आरोप[1] लगाते हैं। पाखंड तो सब धर्मोंमें है। जहां सूरज है वहां अंधेरा रहता ही है। परछाईं हरएक चीजके साथ जुड़ी रहती है। धार्मिक ठगोंको आप दुनियवी ठगोंसे अच्छे पायेंगे। सभ्यतामें जो पाखंड मैं आपको बता चुका हूं, वैसा पाखंड धर्ममें मैंने कभी नहीं देखा।

पाठक: यह कैसे कहा जा सकता है? धर्मके नाम पर हिन्दू-मुसलमान लड़े, धर्मके नाम पर ईसाइयोंमें बड़े बड़े युद्ध हुए। धर्मके नाम पर हजारों बेगुनाह लोग मारे गये, उन्हें जला दिया गया, उन पर बड़ी बड़ी मुसीबतें गुजारी गईं। यह तो सभ्यतासे बदतर ही माना जायगा।

संपादक: तो मैं कहूंगा कि यह सब सभ्यताके दुखसे ज्यादा बरदाश्त हो सकने जैसा है। आपने जो कुछ कहा वह पाखंड है, ऐसा सब लोग समझते हैं। इसलिए पाखंडमें फंसे हुए लोग मर गये कि सारा सवाल हल हो गया। जहां भोले लोग हैं वहां ऐसा ही चलता रहेगा। लेकिन उसका असर हमेशाके लिए बुरा नहीं रहता। सभ्यताकी होलीमें जो लोग जल मरे हैं, उनकी तो कोई हद ही नहीं है। उसकी खूबी यह है कि लोग उसे अच्छा मानकर उसमें कूद पड़ते हैं। फिर वे न तो रहते दीनके और न रहते दुनियाके। वे सच बातको बिलकुल भूल जाते हैं। सभ्यता चूहेकी तरह फूंककर काटती है। उसका असर जब हम जानेंगे तब पुराने वहम मुकाबलेमें हमें मीठे लगेंगे। मेरा कहना यह नहीं कि हमें उन वहमोंको कायम रखना चाहिये। नहीं, उनके खिलाफ तो हम लड़ेंगे ही; लेकिन वह लड़ाई धर्मको भूल कर नहीं लड़ी जायगी, बल्कि सही तौर पर धर्मको समझकर और उसकी रक्षा करके लड़ी जायेगी।

पाठक: तब तो आप यह भी कहेंगे कि अंग्रेजोंने हिन्दुस्तानमें शान्तिका जो सुख हमें दिया है वह बेकार है।

संपादक: आप भले शांति देखते हों, पर मैं तो शान्तिका सुख नहीं देखता।

पाठक: तब तो ठग, पिंडारी, भील वगैरा देशमें जो त्रास[2] गुजारते थे, उनमें आपके खयालसे कोई बुराई नहीं थी?

---

१. तोहमत। २. जुल्म।

संपादक: आप जरा सोचेंगे तो मालूम होगा कि उनका त्रास बहुत कम था। अगर सचमुच उनका त्रास भयंकर होता, तो प्रजाका जड़मूलसे कभीका नाश हो जाता। और, हालकी शान्ति तो नामकी ही है। मैं यह कहना चाहता हूं कि इस शान्तिसे हम नामर्द, नपुंसक और डरपोक बन गये हैं। भीलों और पिंडारियोंका स्वभाव अंग्रेजोंने बदल दिया है, ऐसा हम न मान लें। हम पर ऐसा जुल्म होता हो तो हमें उसे बरदाश्त करना चाहिये। लेकिन दूसरे लोग हमें उस जुल्मसे बचावें, यह तो हमारे लिए बिलकुल कलंक[1] जैसा है। हम कमजोर और डरपोक बनें, इससे तो भीलोंके तीर-कमानसे मरना मुझे ज्यादा पसंद है। उस हालतमें जो हिन्दुस्तान था, उसका जोश कुछ दूसरा ही था। मैकॉलेने हिन्दुस्तानियोंको नामर्द माना, वह उसकी अधम अज्ञान दशाको बताता है। हिन्दुस्तानी नामर्द कभी नहीं थे। यह जान लीजिये कि जिस देशमें पहाड़ी लोग बसते हैं, जहां बाघ-भेड़िये रहते हैं, उस देशके रहनेवाले अगर सचमुच डरपोक हों तो उनका नाश ही हो जाये। आप कभी खेतोंमें गये हैं? मैं आपसे यकीनन् कहता हूं कि खेतोंमें हमारे किसान आज भी निर्भय[2] होकर सोते हैं, जब कि अंग्रेज और आप वहां सोनेके लिए आनाकानी करेंगे। बल तो निर्भयता[3] में है; बदन पर मांसके लोंदे होनेमें बल नहीं है। आप थोड़ा भी सोचेंगे तो इस बातको समझ जायेंगे।

और आपको, जो स्वराज्य चाहनेवाले हैं, मैं सावधान[4] करता हूं कि भील, पिंडारी और ठग ये सब हमारे ही देशी भाई हैं। उन्हें जीतना मेरा और आपका काम है। जब तक आपके ही भाईका डर आपको रहेगा, तब तक आप कभी मकसद हासिल नहीं कर सकेंगे।

---

१. दाग़। २. निडर। ३. निडरता। ४. आगाह।

९

हिन्दुस्तानकी दशा – २

रेलगाड़ियां

पाठक: हिन्दुस्तानकी शान्तिके बारेमें मेरा जो मोह था वह आपने ले लिया। अब तो याद नहीं आता कि आपने मेरे पास कुछ भी रहने दिया हो।

संपादक: अब तक तो मैंने आपको सिर्फ धर्मकी दशाका ही ख़याल कराया है। लेकिन हिन्दुस्तान रंक[1] क्यों है, इस बारेमें मैं अपने विचार आपको बताऊंगा तब तो शायद आप मुझसे नफ़रत ही करेंगे; क्योंकि आज तक हमने और आपने जिन चीजोंको लाभकारी माना है, वे मुझे तो नुकसानदेह ही मालूम होती हैं।

पाठक: वे क्या हैं?

संपादक: हिन्दुस्तानको रेलोंने, वकीलोंने और डॉक्टरोंने कंगाल बना दिया है। यह एक ऐसी हालत है कि अगर हम समय पर नहीं चेतेंगे, तो चारों ओरसे घिर कर बरबाद हो जायेंगे।

पाठक: मुझे डर है कि हमारे विचार कभी मिलेंगे या नहीं। आपने तो जो कुछ अच्छा देखनेमें आया है और अच्छा माना गया है, उसी पर धावा बोल दिया है! अब बाकी क्या रहा?

संपादक: आपको धीरज रखना होगा। सभ्यता नुकसान करनेवाली कैसे है, यह तो मुश्किलसे मालूम हो सकता है। डॉक्टर आपको बतलायेंगे कि क्षयका मरीज मौतके दिन तक भी जीनेकी आशा रखता है। क्षयका रोग बाहर दिखाई देनेवाली हानि नहीं पहुंचाता और वह रोग आदमीको झूठी लाली देता है। इससे बीमार विश्वासमें बहता रहता है और आखिर डूब जाता है। सभ्यताका भी ऐसा ही समझिये। वह एक अदृश्य[2] रोग है। उससे चेत कर रहिये।

---

१. कंगाल। २. गैबी।

पाठक : अच्छा, तो अब आप रेल-पुराण सुनाइये।

संपादक : आपके दिलमें यह बात तुरन्त उठेगी कि अगर रेल न हो तो अंग्रेजोंका काबू हिन्दुस्तान पर जितना है उतना तो नहीं ही रहेगा। रेलसे महामारी फैली है। अगर रेलगाड़ी न हो तो कुछ ही लोग एक जगहसे दूसरी जगह जायेंगे और इस कारण संक्रामक[१] रोग सारे देशमें नहीं पहुंच पायेंगे। पहले हम कुदरती तौर पर ही 'सेग्रेगेशन'— सूतक — पालते थे। रेलसे अकाल बढ़े हैं, क्योंकि रेलगाड़ीकी सुविधा[२] के कारण लोग अपना अनाज बेच डालते हैं। जहां महंगाई हो वहां अनाज खिंच जाता है, लोग लापरवाह बनते हैं और उससे अकालका दुख बढ़ता है। रेलसे दुष्टता[३] बढ़ती है। बुरे लोग अपनी बुराई तेजीसे फैला सकते हैं। हिन्दुस्तानमें जो पवित्र[४] स्थान थे, वे अपवित्र[५] बन गये हैं। पहले लोग बड़ी मुसीबतसे वहां जाते थे। ऐसे लोग वहां सच्ची भावनासे ईश्वरको भजने जाते थे; अब तो ठगोंकी टोली सिर्फ ठगनेके लिए वहां जाती है।

पाठक : यह तो आपने इकतरफा बात कही। जैसे खराब लोग वहां जा सकते हैं वैसे अच्छे भी तो जा सकते हैं। वे क्यों रेलगाड़ीका पूरा लाभ नहीं लेते?

संपादक : जो अच्छा होता है वह बीरबहूटीकी तरह धीरे चलता है। उसकी रेलसे नहीं बनती। अच्छा करनेवालेके मनमें स्वार्थ नहीं रहता। वह जल्दी नहीं करेगा। वह जानता है कि आदमी पर अच्छी बातका असर डालनेमें बहुत समय लगता है। बुरी बात ही तेजीसे बढ़ सकती है। घर बनाना मुश्किल है, तोड़ना सहल है। इसलिए रेलगाड़ी हमेशा दुष्टताका ही फैलाव करेगी, यह बराबर समझ लेना चाहिये। उससे अकाल फैलेगा या नहीं, इस बारेमें कोई शास्त्रकार मेरे मनमें घड़ी भर शंका पैदा कर सकता है; लेकिन रेलसे दुष्टता बढ़ती है यह बात जो मेरे मनमें जम गयी है वह मिटनेवाली नहीं है।

पाठक : लेकिन रेलका सबसे बड़ा लाभ दूसरे सब नुकसानोंको भुला देता है। रेल है तो आज हिन्दुस्तानमें एक-राष्ट्रका जोश देखनेमें आता है। इसलिए मैं तो कहूंगा कि रेलके आनेसे कोई नुकसान नहीं हुआ।

---

१. फैलनेवाले। २. सुभीता। ३. नीचता। ४. पाक। ५. नापाक।

संपादक : यह आपकी भूल ही है। आपको अंग्रेजोंने सिखाया है कि आप एक-राष्ट्र नहीं थे और एक-राष्ट्र बननेमें आपको सैकड़ों बरस लगेंगे। यह बात बिलकुल बेबुनियाद है। जब अंग्रेज हिन्दुस्तानमें नहीं थे तब हम एक-राष्ट्र थे, हमारे विचार एक थे, हमारा रहन-सहन एक था। तभी तो अंग्रेजोंने यहां एक-राज्य कायम किया। भेद तो हमारे बीच बादमें उन्होंने पैदा किये।

पाठक : यह बात मुझे ज्यादा समझनी होगी।

संपादक : मैं जो कहता हूं वह बिना सोचे-समझे नहीं कहता। एक-राष्ट्रका यह अर्थ नहीं कि हमारे बीच कोई मतभेद नहीं था; लेकिन हमारे मुख्य लोग पैदल या बैलगाड़ीमें हिन्दुस्तानका सफ़र करते थे, वे एक-दूसरेकी भाषा सीखते थे और उनके बीच कोई अन्तर नहीं था। जिन दूरदर्शी[1] पुरुषोंने सेतुबंध रामेश्वर, जगन्नाथपुरी और हरद्वारकी यात्रा ठहराई,[2] उनका आपकी रायमें क्या खयाल होगा? वे मूर्ख नहीं थे, यह तो आप कबूल करेंगे। वे जानते थे कि ईश्वर-भजन घर बैठे भी होता है। उन्होंने हमें यह सिखाया है कि मन चंगा तो कठौतीमें गंगा। लेकिन उन्होंने सोचा कि कुदरतने हिन्दुस्तानको एक-देश बनाया है, इसलिए वह एक-राष्ट्र होना चाहिये। इसलिए उन्होंने अलग अलग स्थान तय करके लोगोंको एकताका विचार इस तरह दिया, जैसा दुनियामें और कहीं नहीं दिया गया है। दो अंग्रेज जितने एक नहीं हैं उतने हम हिन्दुस्तानी एक थे और एक हैं। सिर्फ हम और आप जो खुदको सभ्य मानते हैं उन्हींके मनमें ऐसा आभास (भ्रम) पैदा हुआ कि हिन्दुस्तानमें हम अलग अलग राष्ट्र हैं। रेलके कारण हम अपनेको अलग राष्ट्र मानने लगे और रेलके कारण एक-राष्ट्रका खयाल फिरसे हमारे मनमें आने लगा, ऐसा आप मानें तो मुझे हर्ज नहीं है। अफीमची कह सकता है कि अफीमके नुकसानका पता मुझे अफीमसे चला, इसलिए अफीम अच्छी चीज है। यह सब आप अच्छी तरह सोचिये। अभी आपके मनमें और भी शंकाएं उठेंगी। लेकिन आप खुद उन सबको हल कर सकेंगे।

---

१. दूरंदेश। २. निश्चित की।

पाठक: आपने जो कुछ कहा उस पर मैं सोचूंगा। लेकिन एक सवाल मेरे मनमें इसी समय उठता है। मुसलमान हिन्दुस्तानमें आये उसके पहलेके हिन्दुस्तानकी बात आपने की। लेकिन अब तो मुसलमानों, पारसियों, ईसाइयोंकी हिन्दुस्तानमें बड़ी संख्या है। वे एक-राष्ट्र नहीं हो सकते। कहा जाता है कि हिन्दू-मुसलमानोंमें कट्टर वैर है। हमारी कहावतें भी ऐसी ही हैं। 'मियां और महादेवकी नहीं बनेगी।' हिन्दू पूर्वमें ईश्वरको पूजता है, तो मुस्लिम पश्चिममें पूजता है। मुसलमान हिन्दूको बुतपरस्त — मूर्तिपूजक — मानकर उससे नफ़रत करता है। हिन्दू मूर्तिपूजक है, मुसलमान मूर्तिको तोड़नेवाला है। हिन्दू गायको पूजता है, मुसलमान उसे मारता है। हिन्दू अहिंसक है, मुसलमान हिंसक। यों पग-पग पर जो विरोध[1] है, वह कैसे मिटे और हिन्दुस्तान एक कैसे हो?

१०

हिन्दुस्तानकी दशा – ३

हिन्दू-मुसलमान

संपादक: आपका आखिरी सवाल बड़ा गम्भीर मालूम होता है। लेकिन सोचने पर वह सहल मालूम होगा। यह सवाल उठा है, उसका कारण भी रेल, वकील और डॉक्टर हैं। वकीलों और डॉक्टरोंका विचार तो अभी करना बाकी है। रेलोंका विचार हम कर चुके। इतना मैं जोड़ता हूं कि मनुष्य इस तरह पैदा किया गया है कि अपने हाथ-पैरसे बने उतनी ही आने-जाने वगैराकी हलचल उसे करनी चाहिये। अगर हम रेल वगैरा साधनोंसे दौड़धूप करें ही नहीं, तो बहुत पेचीदे सवाल हमारे सामने आयेंगे ही नहीं। हम खुद होकर दुखको न्योतते हैं। भगवानने मनुष्यकी हद उसके शरीरकी बनावटसे ही बांध दी, लेकिन मनुष्यने उस बनावटकी हदको लांघनेके उपाय[2] ढूंढ़ निकाले। मनुष्यको अक़ल इसलिए दी गई है कि उसकी मददसे वह भगवानको पहचाने। पर मनुष्यने अक़लका उपयोग

१. बेमेल। २. तरकीबें।

भगवानको भूलनेमें किया। मैं अपनी कुदरती हदके मुताबिक अपने आस-पास रहनेवालोंकी ही सेवा कर सकता हूं; पर मैंने तुरन्त अपनी मगरूरी-में ढूंढ़ निकाला कि मुझे तो सारी दुनियाकी सेवा अपने तनसे करनी चाहिये। ऐसा करनेमें अनेक धर्मोंके और कई तरहके लोगोंका साथ होगा। यह बोझ मनुष्य उठा ही नहीं सकता और इसलिए अकुलाता है। इस विचारसे आप समझ लेंगे कि रेलगाड़ी सचमुच एक तूफानी साधन है। मनुष्य रेलगाड़ीका उपयोग करके भगवानको भूल गया है।

पाठक: पर मैं तो अब जो सवाल मैंने उठाया है उसका जवाब सुननेको अधीर हो रहा हूं। मुसलमानोंके आनेसे हमारा एक-राष्ट्र रहा या मिटा?

संपादक: हिन्दुस्तानमें चाहे जिस धर्मके आदमी रह सकते हैं; उससे वह एक-राष्ट्र मिटनेवाला नहीं है। जो नये लोग उसमें दाखिल होते हैं, वे उसकी प्रजाको तोड़ नहीं सकते, वे उसकी प्रजामें घुलमिल जाते हैं। ऐसा हो तभी कोई मुल्क एक-राष्ट्र माना जायगा। ऐसे मुल्कमें दूसरे लोगोंका समावेश करनेका गुण होना चाहिये। हिन्दुस्तान ऐसा था और आज भी है। यों तो जितने आदमी उतने धर्म ऐसा मान सकते हैं। एक-राष्ट्र होकर रहनेवाले लोग एक-दूसरेके धर्ममें दखल नहीं देते; अगर देते हैं तो समझना चाहिये कि वे एक-राष्ट्र होनेके लायक नहीं हैं। अगर हिन्दू मानें कि सारा हिन्दुस्तान सिर्फ हिन्दुओंसे भरा होना चाहिये, तो यह एक निरा सपना है। मुसलमान अगर ऐसा मानें कि उसमें सिर्फ मुसलमान ही रहें, तो उसे भी सपना ही समझिये। फिर भी हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, जो इस देशको अपना वतन मानकर बस चुके हैं एक-देशी, एक-मुल्की हैं; वे देशी-भाई हैं, और उन्हें एक-दूसरेके स्वार्थके लिए भी एक होकर रहना पड़ेगा।

दुनियाके किसी भी हिस्सेमें एक-राष्ट्रका अर्थ एक-धर्म नहीं किया गया है; हिन्दुस्तानमें तो ऐसा था ही नहीं।

पाठक: लेकिन दोनों क़ौमोंके कट्टर वैरका क्या?

संपादक: 'कट्टर वैर' शब्द दोनोंके दुश्मनने खोज निकाला है। जब हिन्दू-मुसलमान झगड़ते थे तब वे ऐसी बातें भी करते थे। झगड़ा तो

हमारा कबका बंद हो गया है। फिर कट्टर वैर काहेका? और इतना याद रखिये कि अंग्रेजोंके आनेके बाद ही हमारा झगड़ा बन्द हुआ ऐसा नहीं है। हिन्दू लोग मुसलमान बादशाहोंके मातहत और मुसलमान हिन्दू राजाओंके मातहत रहते आये हैं। दोनोंको बादमें समझमें आ गया कि झगड़नेसे कोई फायदा नहीं; लड़ाईसे कोई अपना धर्म नहीं छोड़ेंगे और कोई अपनी जिद भी नहीं छोड़ेंगे। इसलिए दोनोंने मिलकर रहनेका फ़ैसला किया। झगड़े तो फिरसे अंग्रेजोंने शुरू करवाये।

'मियां और महादेवकी नहीं बनती' इस कहावतका भी ऐसा ही समझिये। कुछ कहावतें हमेशाके लिए रह जाती हैं और नुकसान करती ही रहती हैं। हम कहावतकी धुनमें इतना भी याद नहीं रखते कि बहुतेरे हिन्दुओं और मुसलमानोंके बाप-दादे एक ही थे, हमारे अन्दर एक ही खून है। क्या धर्म बदला इसलिए हम आपसमें दुश्मन बन गये? धर्म तो एक ही जगह पहुंचनेके अलग अलग रास्ते हैं। हम दोनों अलग-अलग रास्ते लें, इससे क्या हो गया? उसमें लड़ाई काहेकी?

और ऐसी कहावतें तो शैवों और वैष्णवोंमें भी चलती हैं; पर इससे कोई यह नहीं कहेगा कि वे एक-राष्ट्र नहीं हैं। वेदधर्मियों और जैनोंके बीच बहुत फर्क माना जाता है, फिर भी इससे वे अलग राष्ट्र नहीं बन जाते। हम गुलाम हो गये हैं, इसीलिए अपने झगड़े हम तीसरेके पास ले जाते हैं।

जैसे मुसलमान मूर्तिका खंडन करनेवाले हैं, वैसे हिन्दुओंमें भी मूर्तिका खंडन करनेवाला एक वर्ग देखनेमें आता है। ज्यों ज्यों सही ज्ञान बढ़ेगा त्यों त्यों हम समझते जायेंगे कि हमें पसन्द न आनेवाला धर्म दूसरा आदमी पालता हो, तो भी उससे वैरभाव रखना हमारे लिए ठीक नहीं; हम उस पर जबरदस्ती न करें।

पाठक : अब गोरक्षाके बारेमें अपने विचार बताइये।

संपादक : मैं खुद गायको पूजता हूं यानी मान देता हूं। गाय हिन्दुस्तानकी रक्षा करनेवाली है, क्योंकि उसकी संतान पर हिन्दुस्तानका, जो खेती-प्रधान देश है, आधार है। गाय कई तरहसे उपयोगी जानवर है। वह उपयोगी जानवर है, यह तो मुसलमान भाई भी कबूल करेंगे।

लेकिन जैसे मैं गायको पूजता हूं वैसे मैं मनुष्यको भी पूजता हूं। जैसे गाय उपयोगी है वैसे मनुष्य भी — फिर चाहे वह मुसलमान हो या हिन्दू — उपयोगी है। तब क्या गायको बचानेके लिए मैं मुसलमानसे लड़ूंगा? क्या उसे मैं मारूंगा? ऐसा करनेसे मैं मुसलमानका और गायका भी दुश्मन बनूंगा। इसलिए मैं कहूंगा कि गायकी रक्षा करनेका एक यही उपाय है कि मुझे अपने मुसलमान भाईके सामने हाथ जोड़ने चाहिये और उसे देशके खातिर गायको बचानेके लिए समझाना चाहिये। अगर वह न समझे तो मुझे गायको मरने देना चाहिये, क्योंकि वह मेरे बसकी बात नहीं। अगर मुझे गाय पर अत्यंत[1] दया आती हो तो अपनी जान दे देनी चाहिये, लेकिन मुसलमानकी जान नहीं लेनी चाहिये। यही धार्मिक कानून है, ऐसा मैं तो मानता हूं।

'हां' और 'नहीं' के बीच हमेशा बैर रहता है। अगर मैं वाद-विवाद[2] करूंगा, तो मुसलमान भी वाद-विवाद करेगा। अगर मैं टेढ़ा बनूंगा, तो वह भी टेढ़ा बनेगा। अगर मैं बालिश्त भर नमूंगा, तो वह हाथ भर नमेगा; और अगर वह नहीं भी नमे तो मेरा नमना गलत नहीं कहलायेगा। जब हमने जिद की तब गोकुशी बढ़ी। मेरी राय है कि गोरक्षा प्रचारिणी सभा गोवध प्रचारिणी सभा मानी जानी चाहिये। ऐसी सभाका होना हमारे लिए बदनामीकी बात है। जब गायकी रक्षा करना हम भूल गये तब ऐसी सभाकी जरूरत पड़ी होगी।

मेरा भाई गायको मारने दौड़े, तो मैं उसके साथ कैसा बरताव करूंगा? उसे मारूंगा या उसके पैरोंमें पड़ूंगा? अगर आप कहें कि मुझे उसके पांव पड़ना चाहिये, तो मुझे मुसलमान भाईके भी पांव पड़ना चाहिये।

गायको दुख देकर हिन्दू गायका वध करता है; इससे गायको कौन छुड़ाता है? जो हिन्दू गायकी औलादको[3] पैना (आर) भोंकता है, उस हिन्दूको कौन समझाता है? इससे हमारे एक-राष्ट्र होनेमें कोई रुकावट नहीं आई है।

अंतमें, हिन्दू अहिंसक और मुसलमान हिंसक है, यह बात अगर सही हो तो अहिंसकका धर्म क्या है? अहिंसकको आदमीकी हिंसा करनी

१. बेहद। २. बहस। ३. बैलको।

चाहिये, ऐसा कहीं लिखा नहीं है। अहिंसकके लिए तो राह सीधी है। उसे एकको बचानेके लिए दूसरेकी हिंसा करनी ही नहीं चाहिये। उसे तो मात्र चरण-वंदना करनी चाहिये, सिर्फ समझानेका काम करना चाहिये। इसीमें उसका पुरुषार्थ[१] है।

लेकिन क्या तमाम हिन्दू अहिंसक हैं? सवालकी जड़में जाकर विचार करने पर मालूम होता है कि कोई भी अहिंसक नहीं है, क्योंकि जीवको तो हम मारते ही हैं। लेकिन इस हिंसासे हम छूटना चाहते हैं, इसलिए अहिंसक (कहलाते) हैं। साधारण विचार करनेसे मालूम होता है कि बहुतसे हिन्दू मांस खानेवाले हैं, इसलिए वे अहिंसक नहीं माने जा सकते। खींच-तानकर दूसरा अर्थ करना हो तो मुझे कुछ कहना नहीं है। जब ऐसी हालत है तब मुसलमान हिंसक और हिन्दू अहिंसक हैं, इसलिए दोनोंकी नहीं बनेगी, यह सोचना बिलकुल गलत है।

ऐसे विचार स्वार्थी धर्मशिक्षकों, शास्त्रियों और मुल्लाओंने हमें दिये हैं। और इसमें जो कमी रह गई थी, उसे अंग्रेजोंने पूरा किया है। उन्हें इतिहास लिखनेकी आदत है; हरएक जातिके रीति-रिवाज जाननेका वे दंभ[२] करते हैं। ईश्वरने हमारा मन तो छोटा बनाया है, फिर भी वे ईश्वरी दावा करते आये हैं और तरह तरहके प्रयोग[३] करते हैं। वे अपने बाजे खुद बजाते हैं और हमारे मनमें अपनी बात सही होनेका विश्वास जमाते हैं। हम भोलेपनमें उस सब पर भरोसा कर लेते हैं।

जो टेढ़ा नहीं देखना चाहते वे देख सकेंगे कि कुरान शरीफ़में ऐसे सैकड़ों वचन हैं, जो हिन्दुओंको मान्य[४] हों; भगवद्गीतामें ऐसी बातें लिखी हैं कि जिनके खिलाफ मुसलमानको कोई भी एतराज नहीं हो सकता। कुरान शरीफ़का कुछ भाग मैं न समझ पाऊं या कुछ भाग मुझे पसंद न आये, इस वजहसे क्या मैं उसे माननेवालेसे नफ़रत करूं? झगड़ा दोसे ही हो सकता है। मुझे झगड़ा नहीं करना हो, तो मुसलमान क्या करेगा? और मुसलमानको झगड़ा न करना हो, तो मैं क्या कर सकता हूं? हवामें हाथ उठानेवालेका हाथ उखड़ जाता है। सब अपने अपने धर्मका

---

१. बहादुरी। २. दिखावा। ३. आजमाइश। ४. मंजूर।

स्वरूप समझकर उससे चिपके रहें और शास्त्रियों व मुल्लाओंको बीचमें न आने दें, तो झगड़ेका मुंह हमेशाके लिए काला ही रहेगा।

पाठक: अंग्रेज दोनों क़ौमोंका मेल होने देंगे?

संपादक: यह सवाल डरपोक आदमीका है। यह सवाल हमारी हीनताको दिखाता है। अगर दो भाई चाहते हों कि उनका आपसमें मेल बना रहे, तो कौन उनके बीचमें आ सकता है? अगर तीसरा आदमी दोनोंके बीच झगड़ा पैदा कर सके, तो उन भाइयोंको हम कच्चे दिलके कहेंगे। उसी तरह अगर हम — हिन्दू और मुसलमान — कच्चे दिलके होंगे, तो फिर अंग्रेजोंका क़सूर निकालना बेकार होगा। कच्चा घड़ा एक कंकड़से नहीं तो दूसरे कंकड़से फूटेगा ही। घड़ेको बचानेका रास्ता यह नहीं है कि उसे कंकड़से दूर रखा जाय, बल्कि यह है कि उसे पक्का बनाया जाय, जिससे कंकड़का भय ही न रहे। उसी तरह हमें पक्के दिलके बनना है। हम दोनोंमें से कोई एक (भी) पक्के दिलके होंगे, तो तीसरेकी कुछ नहीं चलेगी। यह काम हिन्दू आसानीसे कर सकते हैं। उनकी संख्या बड़ी है, वे अपनेको ज्यादा पढ़े-लिखे मानते हैं; इसलिए वे पक्का दिल रख सकते हैं।

दोनों क़ौमोंके बीच अविश्वास[1] है, इसलिए मुसलमान लॉर्ड मॉर्लेसे कुछ हक मांगते हैं। इसमें हिन्दू क्यों विरोध करें? अगर हिन्दू विरोध न करें, तो अंग्रेज चौंकेंगे, मुसलमान धीरे धीरे हिन्दुओंका भरोसा करने लगेंगे और दोनोंका भाईचारा बढ़ेगा। अपने झगड़े अंग्रेजोंके पास ले जानेमें हमें शरमाना चाहिये। ऐसा करनेसे हिन्दू कुछ खोनेवाले नहीं हैं; इसका हिसाब आप खुद लगा सकेंगे। जिस आदमीने दूसरे पर विश्वास किया, उसने आज तक कुछ खोया नहीं है।

मैं यह नहीं कहना चाहता कि हिन्दू-मुसलमान कभी झगड़ेंगे ही नहीं। दो भाई साथ रहें तो उनके बीच तकरार होती है। कभी हमारे सिर भी फूटेंगे। ऐसा होना जरूरी नहीं है, लेकिन सब लोग एकसी अक़लके नहीं होते। दोनों जोशमें आते हैं तब अकसर गलत काम कर बैठते हैं। उन्हें हमें सहन करना होगा। लेकिन ऐसी तकरारको भी बड़ी वकालत

१. नाएतबार।

बघारकर हम अंग्रेजोंकी अदालतमें न ले जायें। दो आदमी लड़ें, लड़ाईमें दोनोंके सिर या एकका सिर फूटे, तो उसमें तीसरा क्या न्याय करेगा? जो लड़ेंगे वे जख्मी भी होंगे। बदनसे बदन टकरायेगा तब कुछ निशानी तो रहेगी ही। उसमें न्याय क्या हो सकता है?

११

हिन्दुस्तानकी दशा – ४

वकील

पाठक: आप कहते हैं कि दो आदमी झगड़ें तब उसका न्याय भी नहीं कराना चाहिये। यह तो आपने अजीब बात कही।

संपादक: इसे अजीब कहिये या दूसरा कोई विशेषण[1] लगाइये, पर बात सही है। आपकी शंका हमें वकील-डॉक्टरोंकी पहचान कराती है। मेरी राय है कि वकीलोंने हिन्दुस्तानको गुलाम बनाया है, हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़े बढ़ाये हैं और अंग्रेजी हुकूमतको यहां मजबूत किया है।

पाठक: ऐसे इलजाम लगाना आसान है, लेकिन उन्हें साबित करना मुश्किल होगा। वकीलोंके सिवा दूसरा कौन हमें आज़ादीका मार्ग बताता? उनके सिवा गरीबोंका बचाव कौन करता? उनके सिवा कौन हमें न्याय दिलाता? देखिये, स्व० मनमोहन घोषने कितनोंको बचाया? खुद एक कौड़ी भी उन्होंने नहीं ली। कांग्रेस, जिसके आपने ही बखान किये हैं, वकीलोंसे निभती है और उनकी मेहनतसे ही उसमें काम होते हैं। इस वर्ग[2]की आप निंदा करें, यह इन्साफ़के साथ गैर-इन्साफ़ करने जैसा है। वह तो आपके हाथमें अखबार आया इसलिए चाहे जो बोलनेकी छूट लेने जैसा लगता है।

संपादक: जैसा आप मानते हैं वैसा ही मैं भी एक समय मानता था। वकीलोंने कभी कोई अच्छा काम नहीं किया, ऐसा मैं आपसे नहीं कहना चाहता। मि० मनमोहन घोषकी मैं इज्जत करता हूं।

---

१. सिफ़त। २. जमात।

उन्होंने गरीबोंकी मदद की थी यह बात सही है। कांग्रेसमें वकीलोंने कुछ काम किया है, यह भी हम मान सकते हैं। वकील भी आखिर मनुष्य हैं; और मनुष्य-जातिमें कुछ तो अच्छाई है ही। वकीलोंकी भलमनसीके जो बहुतसे किस्से देखनेमें आते हैं, वे तभी हुए, जब वे अपनेको वकील समझना भूल गये। मुझे तो आपको सिर्फ यही दिखाना है कि उनका धंधा उन्हें अनीति सिखानेवाला है। वे बुरे लालचमें फंसते हैं, जिसमें से उबरनेवाले विरले ही होते हैं।

हिन्दू-मुसलमान आपसमें लड़े हैं। तटस्थ[1] आदमी उनसे कहेगा कि आप गयी-बीतीको भूल जायें; इसमें दोनोंका कसूर रहा होगा। अब दोनों मिलकर रहिये। लेकिन वे वकीलके पास जाते हैं। वकीलका फ़र्ज हो जाता है कि वह मुवक्किलकी ओर जोर लगाये। मुवक्किलके खयालमें भी न हों ऐसी दलीलें मुवक्किलकी ओरसे ढूंढ़ना वकीलका काम है। अगर वह ऐसा नहीं करता तो माना जायगा कि वह अपने पेशेको बट्टा लगाता है। इसलिए वकील तो आम तौर पर झगड़ा आगे बढ़ानेकी ही सलाह देगा।

लोग दूसरोंका दुख दूर करनेके लिए नहीं, बल्कि पैसा पैदा करनेके लिए वकील बनते हैं। वह एक कमाईका रास्ता है। इसलिए वकीलका स्वार्थ झगड़ा बढ़ानेमें है। यह तो मेरी जानी हुई बात है कि जब झगड़े होते हैं तब वकील खुश होते हैं। मुखतार लोग भी वकीलकी जातके हैं। जहां झगड़े नहीं होते वहां भी वे झगड़े खड़े करते हैं। उनके दलाल जोंककी तरह गरीब लोगोंसे चिपकते हैं और उनका खून चूस लेते हैं। वह पेशा ऐसा है कि उसमें आदमियोंको झगड़ेके लिए बढ़ावा मिलता ही है। वकील लोग निठल्ले होते हैं। आलसी लोग ऐश-आराम करनेके लिए वकील बनते हैं। यह सही बात है। वकालतका पेशा बड़ा आबरूदार पेशा है, ऐसा खोज निकालनेवाले भी वकील ही हैं। कानून वे बनाते हैं, उसकी तारीफ़ भी वे ही करते हैं। लोगोंसे क्या दाम लिये जायं, यह भी वे ही तय करते हैं; और लोगों पर रोब जमानेके लिए आडंबर[2] ऐसा करते हैं, मानो वे आसमानसे उतर कर आये हुए देवदूत[3] हों!

---

१. बेतरफ़दार। २. दिखावा। ३. फ़रिश्ते।

वे मजदूरसे ज्यादा रोज़ी क्यों मांगते हैं? उनकी ज़रूरतें मजदूरसे ज्यादा क्यों हैं? उन्होंने मजदूरसे ज्यादा देशका क्या भला किया है? क्या भला करनेवालेको ज्यादा पैसा लेनेका हक है? और अगर पैसेके खातिर उन्होंने भला किया हो, तो उसे भला कैसे कहा जाय? यह तो उस पेशेका जो गुण है वह मैंने बताया।

वकीलोंके कारण हिन्दू-मुसलमानोंके बीच कुछ दंगे हुए हैं, यह तो जिन्हें अनुभव है वे जानते होंगे। उनसे कुछ खानदान बरबाद हो गये हैं। उनकी बदौलत भाइयोंमें ज़हर दाखिल हो गया है। कुछ रियासतें वकीलोंके जालमें फंसकर क़र्ज़दार हो गयी हैं। बहुतसे गरासिये[1] इन वकीलोंकी कारस्तानीसे लुट गये हैं। ऐसी बहुतसी मिसालें दी जा सकती हैं।

लेकिन वकीलोंसे बड़ेसे बड़ा नुकसान तो यह हुआ है कि अंग्रेजोंका जुआ हमारी गर्दन पर मजबूत जम गया है। आप सोचिये। क्या आप मानते हैं कि अंग्रेजी अदालतें यहां न होतीं तो वे हमारे देशमें राज कर सकते थे? ये अदालतें लोगोंके भलेके लिए नहीं हैं। जिन्हें अपनी सत्ता कायम रखनी है, वे अदालतोंके ज़रिये लोगोंको बसमें रखते हैं। लोग अगर खुद अपने झगड़े निबटा लें, तो तीसरा आदमी उन पर अपनी सत्ता नहीं जमा सकता। सचमुच जब लोग खुद मार-पीट करके या रिश्तेदारोंको पंच बनाकर अपना झगड़ा निबटा लेते थे तब वे बहादुर थे। अदालतें आयीं और वे कायर बन गये। लोग आपसमें लड़ कर झगड़े मिटायें, यह जंगली माना जाता था। अब तीसरा आदमी झगड़ा मिटाता है, यह क्या कम जंगलीपन है? क्या कोई ऐसा कह सकेगा कि तीसरा आदमी जो फैसला देता है वह सही फैसला ही होता है? कौन सच्चा है, यह दोनों पक्षके लोग जानते हैं। हम भोलेपनमें मान लेते हैं कि तीसरा आदमी हमसे पैसे लेकर हमारा इन्साफ़ करता है।

इस बातको अलग रखें। हकीकत तो यही दिखानी है कि अंग्रेजोंने अदालतोंके ज़रिये हम पर अंकुश जमाया है और अगर हम वकील न बनें तो ये अदालतें चल ही नहीं सकतीं। अगर अंग्रेज ही जज होते, अंग्रेज ही वकील होते और अंग्रेज ही सिपाही होते, तो वे सिर्फ अंग्रेजों पर ही

---

१. राजवंशी जागीरदार।

राज करते। हिन्दुस्तानी जज और हिन्दुस्तानी वकीलके बगैर उनका काम चल नहीं सका। वकील कैसे पैदा हुए, उन्होंने कैसी धांधल मचाई, यह सब अगर आप समझ सकें, तो मेरे जितनी ही नफ़रत आपको भी इस पेशेके लिए होगी। अंग्रेजी सत्ताकी एक मुख्य[1] कुंजी उनकी अदालतें हैं और अदालतोंकी कुंजी वकील हैं। अगर वकील वकालत करना छोड़ दें और वह पेशा वेश्याके पेशे जैसा नीच माना जाय, तो अंग्रेजी राज एक दिनमें टूट जाय। वकीलोंने हिन्दुस्तानी प्रजा पर यह तोहमत लगवाई है कि हमें झगड़े प्यारे हैं और हम कोर्ट-कचहरी रूपी पानीकी मछलियां हैं।

जो शब्द मैं वकीलोंके लिए इस्तेमाल करता हूं, वे ही शब्द जजोंको भी लागू होते हैं। ये दोनों मौसेरे भाई हैं और एक-दूसरेको बल देनेवाले हैं।

१२

हिन्दुस्तानकी दशा – ५

डॉक्टर

पाठक : वकीलोंकी बात तो हम समझ सकते हैं। उन्होंने जो अच्छा काम किया है वह जान-बूझकर नहीं किया, ऐसा यकीन होता है। बाकी उनके धंधेको देखा जाय तो वह कनिष्ठ[2] ही है। लेकिन आप तो डॉक्टरोंको भी उनके साथ घसीटते हैं। यह कैसे?

संपादक : मैं जो विचार आपके सामने रखता हूं, वे इस समय तो मेरे अपने ही हैं। लेकिन ऐसे विचार मैंने ही किये हैं सो बात नहीं। पश्चिमके सुधारक खुद मुझसे ज्यादा सख्त शब्दोंमें इन धंधोंके बारेमें लिख गये हैं। उन्होंने वकीलों और डॉक्टरोंकी बहुत निन्दा की है। उनमें से एक लेखकने एक ज़हरी पेड़का चित्र खींचा है, वकील-डॉक्टर वगैरा निकम्मे धंधेवालोंको उसकी शाखाओंके रूपमें बताया है और उस पेड़के तने पर नीति-धर्मकी कुल्हाड़ी उठाई है। अनीतिको इन सब धंधोंकी

---

१. बड़ी। २. बहुत हल्का।

जड़ बताया है। इससे आप यह समझ लेंगे कि मैं आपके सामने अपने दिमागसे निकाले हुए नये विचार नहीं रखता, लेकिन दूसरोंका और अपना अनुभव आपके सामने रखता हूं।

डॉक्टरोंके बारेमें जैसे आपको अभी मोह है वैसे कभी मुझे भी था। एक समय ऐसा था जब मैंने खुद डॉक्टर होनेका इरादा किया था और सोचा था कि डॉक्टर बनकर क़ौमकी सेवा करूंगा। मेरा यह मोह अब मिट गया है। हमारे समाजमें वैद्यका धंधा कभी अच्छा माना ही नहीं गया, इसका भान अब मुझे हुआ है; और उस विचारकी कीमत मैं समझ सकता हूं।

अंग्रेजोंने डॉक्टरी विद्यासे भी हम पर काबू जमाया है। डॉक्टरोंमें दंभकी भी कमी नहीं है। मुगल बादशाहको भरमानेवाला एक अंग्रेज डॉक्टर ही था। उसने बादशाहके घरमें कुछ बीमारी मिटाई, इसलिए उसे सिरोपाव मिला। अमीरोंके पास पहुंचनेवाले भी डॉक्टर ही हैं।

डॉक्टरोंने हमें जड़से हिला दिया है। डॉक्टरोंसे नीम-हकीम ज्यादा अच्छे, ऐसा कहनेका मेरा मन होता है। इस पर हम कुछ विचार करें।

डॉक्टरोंका काम सिर्फ शरीरको संभालनेका है; या शरीरको संभालनेका भी नहीं है। उनका काम शरीरमें जो रोग पैदा होते हैं उन्हें दूर करनेका है। रोग क्यों होते हैं? हमारी ही गफ़लतसे। मैं बहुत खाऊं और मुझे बदहजमी, अजीरन हो जाय; फिर मैं डॉक्टरके पास जाऊं और वह मुझे गोली दे; गोली खाकर मैं चंगा हो जाऊं और दुबारा खूब खाऊं और फिरसे गोली लूं। अगर मैं गोली न लेता तो अजीरनकी सजा भुगतता और फिरसे बेहद नहीं खाता। डॉक्टर बीचमें आया और उसने हदसे ज्यादा खानेमें मेरी मदद की। उससे मेरे शरीरको तो आराम हुआ, लेकिन मेरा मन कमज़ोर बना। इस तरह आखिर मेरी यह हालत होगी कि मैं अपने मन पर जरा भी काबू न रख सकूंगा।

मैंने विलास किया, मैं बीमार पड़ा; डॉक्टरने मुझे दवा दी और मैं चंगा हुआ। क्या मैं फिरसे विलास नहीं करूंगा? जरूर करूंगा।

अगर डॉक्टर बीचमें न आता तो कुदरत अपना काम करती, मेरा मन मजबूत बनता और अन्तमें निर्विषयी[1] होकर मैं सुखी होता।

अस्पतालें पापकी जड़ हैं। उनकी बदौलत लोग शरीरका जतन कम करते हैं और अनीतिको बढ़ाते हैं।

यूरोपके डॉक्टर तो हद करते हैं। वे सिर्फ शरीरके ही गलत जतनके लिए लाखों जीवोंको हर साल मारते हैं, ज़िंदा जीवों पर प्रयोग करते हैं। ऐसा करना किसी भी धर्मको मंजूर नहीं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जरथोस्ती — सब धर्म कहते हैं कि आदमीके शरीरके लिए इतने जीवोंको मारनेकी जरूरत नहीं।

डॉक्टर हमें धर्मभ्रष्ट[2] करते हैं। उनकी बहुतसी दवाओंमें चरबी या दारू होती है। इन दोनोंमें से एक भी चीज हिन्दू-मुसलमानको चल सके ऐसी नहीं है। हम सभ्य होनेका ढोंग करके, दूसरोंको वहमी मानकर और बे-लगाम[3] होकर चाहे सो करते रहें; यह दूसरी बात है। लेकिन डॉक्टर हमें धर्मसे भ्रष्ट करते हैं, यह साफ और सीधी बात है।

इसका परिणाम[4] यह आता है कि हम निःसत्व[5] और नामर्द बनते हैं। ऐसी दशामें हम लोकसेवा करने लायक नहीं रहते और शरीरसे क्षीण[6] और बुद्धिहीन[7] होते जा रहे हैं। अंग्रेजी या यूरोपियन डॉक्टरी सीखना गुलामीकी गांठको मजबूत बनाने जैसा है।

हम डॉक्टर क्यों बनते हैं, यह भी सोचनेकी बात है। उसका सच्चा कारण तो आबरूदार और पैसा कमानेका धंधा करनेकी इच्छा है। उसमें परोपकारकी बात नहीं है। उस धन्धेमें परोपकार नहीं है, यह तो मैं बता चुका। उससे लोगोंको नुकसान होता है। डॉक्टर सिर्फ आडम्बर दिखाकर ही लोगोंसे बड़ी फीस वसूल करते हैं और अपनी एक पैसेकी दवाके कई रुपये लेते हैं। यों विश्वासमें और चंगे हो जानेकी आशामें लोग डॉक्टरोंसे ठगे जाते हैं। जब ऐसा ही है तब भलाईका दिखावा करनेवाले डॉक्टरोंसे खुले ठग-वैद्य (नीम-हकीम) ज्यादा अच्छे।

१. बे-नफ़्स-परस्त। २. बेदीन। ३. स्वच्छन्द। ४. नतीजा। ५. जिसमें कुछ दम न हो। ६. कमजोर। ७. बे-अक़्ल।

१३

सच्ची सभ्यता कौनसी?

पाठक: आपने रेलको रद कर दिया, वकीलोंकी निन्दा की, डॉक्टरोंको दवा दिया। तमाम कलकाम[1]को भी आप नुकसानदेह मानेंगे, ऐसा मैं देख सकता हूं। तब सभ्यता[2] कहें तो किसे कहें?

संपादक: इस सवालका जवाब मुश्किल नहीं है। मैं मानता हूं कि जो सभ्यता हिन्दुस्तानने दिखायी है, उसको दुनियामें कोई नहीं पहुंच सकता। जो बीज हमारे पुरखोंने बोये हैं, उनकी बराबरी कर सके ऐसी कोई चीज देखनेमें नहीं आयी। रोम मिट्टीमें मिल गया, ग्रीसका सिर्फ नाम ही रह गया, मिस्रकी बादशाही चली गई, जापान पश्चिमके शिकंजेमें फंस गया और चीनका कुछ भी कहा नहीं जा सकता। लेकिन गिरा-टूटा जैसा भी हो, हिन्दुस्तान आज भी अपनी बुनियादमें मजबूत है।

जो रोम और ग्रीस गिर चुके हैं, उनकी किताबोंसे यूरोपके लोग सीखते हैं। उनकी गलतियां वे नहीं करेंगे ऐसा गुमान[3] रखते हैं। ऐसी उनकी कंगाल हालत है, जब कि हिन्दुस्तान अचल है, अडिग है। यही उसका भूषण है। हिन्दुस्तान पर आरोप लगाया जाता है कि वह ऐसा जंगली, ऐसा अज्ञान है कि उससे जीवनमें कुछ फेरबदल कराये ही नहीं जा सकते। यह आरोप हमारा गुण[4] है, दोष[5] नहीं। अनुभव[6]से जो हमें ठीक लगा है उसे हम क्यों बदलेंगे? बहुतसे अक़्ल देनेवाले आते-जाते रहते हैं, पर हिन्दुस्तान अडिग रहता है। यह उसकी खूबी है, यह उसका लंगर है।

सभ्यता वह आचरण[7] है जिससे आदमी अपना फ़र्ज अदा करता है। फ़र्ज अदा करनेके मानी हैं नीतिका पालन करना। नीतिके पालनका मतलब है अपने मन और इन्द्रियोंको बसमें रखना। ऐसा करते हुए हम

---

१. यंत्रकाम। २. तहज़ीब। ३. अभिमान। ४. सिफ़त। ५. नुक़्स। ६. तजरबा। ७. बरताव।

अपनेको (अपनी असलियतको) पहचानते हैं। यही सभ्यता है। इससे जो उलटा है वह बिगाड़ करनेवाला है।

बहुतसे अंग्रेज लेखक लिख गये हैं कि ऊपरकी व्याख्या[1] के मुताबिक हिन्दुस्तानको कुछ भी सीखना बाकी नहीं रहता। यह बात ठीक है। हमने देखा कि मनुष्यकी वृत्तियां[2] चंचल हैं। उसका मन बेकारकी दौड़-धूप किया करता है। उसका शरीर जैसे-जैसे ज्यादा दिया जाय वैसे-वैसे ज्यादा मांगता है। ज्यादा लेकर भी वह सुखी नहीं होता। भोग भोगनेसे भोगकी इच्छा बढ़ती जाती है। इसलिए हमारे पुरखोंने भोगकी हद बांध दी। बहुत सोचकर उन्होंने देखा कि सुख-दुःख तो मनके कारण हैं। अमीर अपनी अमीरीकी वजहसे सुखी नहीं है, गरीब अपनी गरीबीके कारण दुखी नहीं है। अमीर दुखी देखनेमें आता है और गरीब सुखी देखनेमें आता है। करोड़ों लोग तो गरीब ही रहेंगे। ऐसा देखकर उन्होंने भोगकी वासना[3] छुड़वाई। हजारों साल पहले जो हल काममें लिया जाता था, उससे हमने काम चलाया। हजारों साल पहले जैसे झोंपड़े थे, उन्हें हमने कायम रखा। हजारों साल पहले जैसी हमारी शिक्षा[4] थी वही चलती आई। हमने नाशकारक होड़को समाजमें जगह नहीं दी; सब अपना अपना धंधा करते रहे। उसमें उन्होंने दस्तूरके मुताबिक दाम लिये। ऐसा नहीं था कि हमें यंत्र वगैराकी खोज करना ही नहीं आता था। लेकिन हमारे पूर्वजोंने देखा कि लोग अगर यंत्र वगैराकी झंझटमें पड़ेंगे, तो गुलाम ही बनेंगे और अपनी नीतिको छोड़ देंगे। उन्होंने सोच-समझकर कहा कि हमें अपने हाथ-पैरोंसे जो काम हो सके वही करना चाहिये। हाथ-पैरोंका इस्तेमाल करनेमें ही सच्चा सुख है, उसीमें तन्दुरुस्ती है।

उन्होंने सोचा कि बड़े शहर खड़े करना बेकारकी झंझट है। उनमें लोग सुखी नहीं होंगे। उनमें धूर्तों[5] की टोलियां और वेश्याओं[6] की गलियां पैदा होंगी; गरीब अमीरोंसे लूटे जायेंगे। इसलिए उन्होंने छोटे देहातोंसे संतोष माना।

---

१. तशरीह। २. भावनाएं—जज्बे। ३. ख्वाहिश। ४. तालीम। ५. ठगों। ६. वेसवाओं।

उन्होंने देखा कि राजाओं और उनकी तलवारके बनिस्वत नीतिका बल ज्यादा बलवान है। इसलिए उन्होंने राजाओंको नीतिवान पुरुषों—ऋषियों और फ़कीरों—से कम दर्जेका माना।

ऐसी जिस राष्ट्रकी गठन है वह राष्ट्र दूसरोंको सिखाने लायक है; वह दूसरोंसे सीखने लायक नहीं है।

इस राष्ट्रमें अदालतें थीं, वकील थे, डॉक्टर-वैद्य थे। लेकिन वे सब ठीक ढंगसे नियमके मुताबिक चलते थे। सब जानते थे कि ये धन्धे बड़े नहीं हैं। और वकील, डॉक्टर वगैरा लोगोंमें लूट नहीं चलाते थे; वे तो लोगोंके आश्रित[1] थे। वे लोगोंके मालिक बनकर नहीं रहते थे। इन्साफ़ काफी अच्छा होता था। अदालतोंमें न जाना, यह लोगोंका ध्येय[2] था। उन्हें भरमानेवाले स्वार्थी लोग नहीं थे। इतनी सड़न भी सिर्फ राजा और राजधानीके आसपास ही थी। यों (आम)प्रजा तो उससे स्वतंत्र रहकर अपने खेतका मालिकी हक भोगती थी। उसके पास सच्चा स्वराज्य था।

और जहां यह चांडाल[3] सभ्यता नहीं पहुंची है, वहां हिन्दुस्तान आज भी वैसा ही है। उसके सामने आप अपने नये ढोंगोंकी बात करेंगे, तो वह आपकी हंसी उड़ायेगा। उस पर न तो अंग्रेज राज करते हैं, न आप कर सकेंगे।

जिन लोगोंके नाम पर हम बात करते हैं, उन्हें हम पहचानते नहीं हैं, न वे हमें पहचानते हैं। आपको और दूसरोंको, जिनमें देशप्रेम है, मेरी सलाह है कि आप देशमें—जहां रेलकी बाढ़ नहीं फैली है उस भागमें—छह माहके लिए घूम आयें और बादमें देशकी लगन लगायें, बादमें स्वराज्यकी बात करें।

अब आपने देखा कि सच्ची सभ्यता मैं किस चीजको कहता हूं। ऊपर मैंने जो तसवीर खींची है वैसा हिन्दुस्तान जहां हो वहां जो आदमी फेरफार करेगा उसे आप दुश्मन समझिये। वह मनुष्य पापी है।

पाठक: आपने जैसा बताया वैसा ही हिन्दुस्तान होता तब तो ठीक था। लेकिन जिस देशमें हजारों बाल-विधवायें हैं, जिस देशमें दो बरसकी बच्चीकी शादी हो जाती है, जिस देशमें बारह सालकी उम्रके लड़के-

---

१. पनाहगीर। २. मक़सद। ३. शैतानी।

लड़कियां घर-संसार चलाते हैं, जिस देशमें स्त्री एकसे ज्यादा पति करती है, जिस देशमें नियोग*की प्रथा है, जिस देशमें धर्मके नाम पर कुमारिकाएं वेसवाएं[1] बनती हैं, जिस देशमें धर्मके नाम पर पाड़ों और बकरोंकी हत्या[2] होती है, वह देश भी हिन्दुस्तान ही है। ऐसा होने पर भी आपने जो बताया वह क्या सभ्यताका लक्षण[3] है?

संपादक: आप भूलते हैं। आपने जो दोष बताये वे तो सचमुच दोष ही हैं। उन्हें कोई सभ्यता नहीं कहता। वे दोष सभ्यताके बावजूद कायम रहे हैं। उन्हें दूर करनेके प्रयत्न हमेशा हुए हैं, और होते ही रहेंगे। हममें जो नया जोश पैदा हुआ है, उसका उपयोग हम इन दोषोंको दूर करनेमें कर सकते हैं।

मैंने आपको आजकी सभ्यताकी जो निशानी बताई, उसे इस सभ्यताके हिमायती खुद बताते हैं। मैंने हिन्दुस्तानकी सभ्यताका जो वर्णन[4] किया, वह वर्णन नई सभ्यताके हिमायतियोंने किया है।

किसी भी देशमें किसी भी सभ्यताके मातहत सभी लोग संपूर्णता तक नहीं पहुंच पाये है। हिन्दुस्तानकी सभ्यताका झुकाव नीतिको मजबूत करनेकी ओर है; पश्चिमकी सभ्यताका झुकाव अनीतिको मजबूत करनेकी ओर है, इसलिए मैंने उसे हानिकारक कहा है। पश्चिमकी सभ्यता निरीश्वरवादी[5] है, हिन्दुस्तानकी सभ्यता ईश्वरमें माननेवाली है।

यों समझकर, ऐसी श्रद्धा रखकर, हिन्दुस्तानके हितचिंतकोंको चाहिये कि वे हिन्दुस्तानकी सभ्यतासे, बच्चा जैसे मांसे चिपटा रहता है वैसे, चिपटे रहें।

---

* एक पुराना रिवाज जिसके मुताबिक बिना संतानवाली स्त्री पतिके रोगी, नपुंसक या मृत होनेकी हालतमें अपने देवर या पतिके किसी और संबन्धीसे संतान पैदा करा सकती थी।

१. देवदासियां। २. कत्ल। ३. निशानी। ४. बयान। ५. खुदामें नहीं माननेवाली।

१४

हिन्दुस्तान कैसे आज़ाद हो ?

पाठक : सभ्यताके बारेमें आपके विचार मैं समझ गया। आपने जो कहा उस पर मुझे ध्यान देना होगा। तुरन्त सब कुछ मंजूर कर लिया जाय, ऐसा तो आप नहीं मानते होंगे; ऐसी आशा भी नहीं रखते होंगे। आपके ऐसे विचारोंके अनुसार आप हिन्दुस्तानके आज़ाद होनेका क्या उपाय बतायेंगे ?

संपादक : मेरे विचार सब लोग तुरन्त मान लें, ऐसी आशा मैं नहीं रखता। मेरा फ़र्ज इतना ही है कि आपके जैसे जो लोग मेरे विचार जानना चाहते हैं, उनके सामने अपने विचार रख दूं। वे विचार उन्हें पसंद आयेंगे या नहीं आयेंगे, यह तो समय बीतने पर ही मालूम होगा।

हिन्दुस्तानकी आज़ादीके उपायोंका हम विचार कर चुके। फिर भी हमने दूसरे रूपमें उन पर विचार किया। अब हम उन पर उनके स्व-रूपमें विचार करें।

जिस कारणसे रोगी बीमार हुआ हो वह कारण अगर दूर कर दिया जाय, तो रोगी अच्छा हो जायगा यह जग-मशहूर बात है। इसी तरह जिस कारणसे हिन्दुस्तान गुलाम बना वह कारण अगर दूर कर दिया जाय, तो वह बंधनसे मुक्त[१] हो जायगा।

पाठक : आपकी मान्यताके मुताबिक हिन्दुस्तानकी सभ्यता अगर सबसे अच्छी है, तो फिर वह गुलाम क्यों बना ?

संपादक : सभ्यता तो मैंने कही वैसी ही है, लेकिन देखनेमें आया है कि हर सभ्यता पर आफतें आती हैं। जो सभ्यता अचल है वह आखिरकार आफतोंको दूर कर देती है। हिन्दुस्तानके बालकोंमें कोई न कोई कमी थी, इसीलिए वह सभ्यता आफतोंसे घिर गयी। लेकिन इस घेरेमें से छूटनेकी ताकत उसमें है, यह उसके गौरव[२] को दिखाता है।

---

१. आज़ाद। २. बड़ाई।

और फिर सारा हिन्दुस्तान उसमें (गुलामीमें) घिरा हुआ नहीं है। जिन्होंने पश्चिमकी शिक्षा पाई है और जो उसके पाशमें¹ फंस गये हैं, वे ही गुलामीमें घिरे हुए हैं। हम जगतको अपनी दमड़ीके नापसे नापते हैं। अगर हम गुलाम हैं, तो जगतको भी गुलाम मान लेते हैं। हम कंगाल दशामें हैं, इसलिए मान लेते हैं कि सारा हिन्दुस्तान ऐसी दशामें है। दरअसल ऐसा कुछ नहीं है। फिर भी हमारी गुलामी सारे देशकी गुलामी है, ऐसा मानना ठीक है। लेकिन ऊपरकी बात हम ध्यानमें रखें तो समझ सकेंगे कि हमारी अपनी गुलामी मिट जाय, तो हिन्दुस्तानकी गुलामी मिट गई ऐसा मान लेना चाहिये। इसमें अब आपको स्वराज्यकी व्याख्या² भी मिल जाती है। हम अपने ऊपर राज करें वही स्वराज्य है; और वह स्वराज्य हमारी हथेलीमें है।

इस स्वराज्यको आप सपने जैसा न मानें। मनसे मानकर बैठे रहनेका भी यह स्वराज्य नहीं है। यह तो ऐसा स्वराज्य है कि आपने अगर इसका स्वाद चख लिया हो, तो दूसरोंको इसका स्वाद चखानेके लिए आप जिन्दगी भर कोशिश करेंगे। लेकिन मुख्य³ बात तो हर शख्सके स्वराज्य भोगनेकी है। डूबता आदमी दूसरेको नहीं तारेगा, लेकिन तैरता आदमी दूसरेको तारेगा। हम खुद गुलाम होंगे और दूसरोंको आजाद करनेकी बात करेंगे, तो वह संभव नहीं है।

लेकिन इतना काफी नहीं है। हमें और भी आगे सोचना होगा।

अब इतना तो आपकी समझमें आया होगा कि अंग्रेजोंको देशसे निकालनेका मकसद सामने रखनेकी जरूरत नहीं है। अगर अंग्रेज हिन्दुस्तानी बनकर रहें, तो हम उनका समावेश यहां कर सकते हैं। अंग्रेज अगर अपनी सभ्यताके साथ रहना चाहें, तो उनके लिए हिन्दुस्तानमें जगह नहीं है। ऐसी हालत पैदा करना हमारे हाथमें है।

पाठक : अंग्रेज हिन्दुस्तानी बनें, यह नामुमकिन है।

संपादक : हमारा ऐसा कहना यह कहनेके बराबर है कि अंग्रेज मनुष्य नहीं हैं। वे हमारे जैसे बनें या न बनें, इसकी हमें परवाह नहीं है। हम अपना घर साफ करें। फिर रहने लायक लोग ही उसमें

---

१. फंदेमें। २. तशरीह। ३. खास या अहम।

रहेंगे; दूसरे अपने-आप चले जायेंगे। ऐसा अनुभव तो हर आदमीको हुआ होगा।

पाठक: ऐसा होनेकी बात तवारीख[1] में तो हमने नहीं पढ़ी।

संपादक: जो चीज तवारीखमें नहीं देखी वह कभी नहीं होगी, ऐसा मानना मनुष्यकी प्रतिष्ठामें अविश्वास करना है। जो बात हमारी अक़्लमें आ सके, उसे आखिर हमें आजमाना तो चाहिये ही।

हर देशकी हालत एकसी नहीं होती। हिन्दुस्तानकी हालत विचित्र है। हिन्दुस्तानका बल असाधारण है। इसलिए दूसरी तवारीखोंसे हमारा कम संबंध है। मैंने आपको बताया कि दूसरी सभ्यतायें मिट्टीमें मिल गयीं, जब कि हिन्दुस्तानी सभ्यताको आंच नहीं आयी है।

पाठक: मुझे ये सब बातें ठीक नहीं लगतीं। हमें लड़कर अंग्रेजों-को निकालना ही होगा, इसमें कोई शक नहीं। जब तक वे हमारे मुल्कमें हैं तब तक हमें चैन नहीं पड़ सकता। 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' ऐसा देखनेमें आता है। अंग्रेज यहां हैं इसलिए हम कमजोर होते जा रहे हैं। हमारा तेज चला गया है और हमारे लोग घबराये-से दीखते हैं। अंग्रेज हमारे देशके लिए यम (काल) जैसे हैं। उस यमको हमें किसी भी प्रयत्नसे भगाना होगा।

संपादक: आप अपने आवेश[2] में मेरा सारा कहना भूल गये हैं। अंग्रेजोंको यहां लानेवाले हम हैं और वे हमारी बदौलत ही यहां रहते हैं। आप यह कैसे भूल जाते हैं कि हमने उनकी सभ्यता अपनायी है, इसलिए वे यहां रह सकते हैं? आप उनसे जो नफ़रत करते हैं वह नफ़रत आपको उनकी सभ्यतासे करनी चाहिये। फिर भी मान लें कि हम लड़कर उन्हें निकालना चाहते हैं। यह कैसे हो सकेगा?

पाठक: इटलीने किया वैसे। मैज़िनी और गैरीबाल्डीने जो किया, वह तो हम भी कर सकते हैं। वे महावीर थे, इस बातसे क्या आप इनकार कर सकेंगे?

---

१. इतिहास। २. जोश।

१५
इटली और हिन्दुस्तान

संपादक: आपने इटलीका उदाहरण[1] ठीक दिया। मैजिनी महात्मा था। गैरीबाल्डी बड़ा योद्धा[2] था। दोनों पूजनीय थे। उनसे हम बहुत सीख सकते हैं। फिर भी इटलीकी दशा और हिन्दुस्तानकी दशामें फ़रक है।

पहले तो मैजिनी और गैरीबाल्डीके बीचका भेद जानने लायक है। मैजिनीके अरमान अलग थे। मैजिनी जैसा सोचता था वैसा इटलीमें नहीं हुआ। मैजिनीने मनुष्य-जातिके कर्तव्यके बारेमें लिखते हुए यह बताया है कि हरएकको स्वराज्य भोगना सीख लेना चाहिये। यह बात उसके लिए सपने जैसी रही। गैरीबाल्डी और मैजिनीके बीच मतभेद[3] हो गया था, यह हमें याद रखना चाहिये। इसके सिवा, गैरीबाल्डीने हर इटालियनके हाथमें हथियार दिये और हर इटालियनने हथियार लिये।

इटली और आस्ट्रियाके बीच सभ्यताका भेद नहीं था। वे तो 'चचेरे भाई' माने जायेंगे। 'जैसेको तैसा' वाली बात इटलीकी थी। इटलीको परदेशी (आस्ट्रियाके) जूएसे छुड़ानेका मोह गैरीबाल्डीको था। इसके लिए उसने कावूरके मारफ़त जो साजिशें[4] कीं, वे उसकी शूरताको बट्टा लगानेवाली हैं।

और अन्तमें नतीजा क्या निकला? इटलीमें इटालियन राज करते हैं इसलिए इटलीकी प्रजा सुखी है, ऐसा आप मानते हों तो मैं आपसे कहूंगा कि आप अंधेरेमें भटकते हैं। मैजिनीने साफ साफ बताया है कि इटली आजाद नहीं हुआ है। विक्टर इमेन्युअलने इटलीका एक अर्थ किया, मैजिनीने दूसरा। इमेन्युअल, कावूर और गैरीबाल्डीके विचारसे इटलीका अर्थ था इमेन्युअल या इटलीका राजा और उसके हुजूरी। मैजिनीके विचारसे इटलीका अर्थ था इटलीके लोग — उसके किसान। इमेन्युअल वगैरा तो उनके (प्रजाके) नौकर थे। मैजिनीका इटली अब भी गुलाम

---

१. मिसाल। २. लड़वैया। ३. अलग राय। ४. षड्यंत्र।

है। दो राजाओंके बीच शतरंजकी बाज़ी लगी थी; इटलीकी प्रजा तो सिर्फ प्यादा थी और है। इटलीके मजदूर अब भी दुखी हैं। इटलीके मजदूरोंकी दाद-फ़रियाद नहीं सुनी जाती, इसलिए वे लोग खून करते हैं, विरोध करते हैं, सिर फोड़ते हैं और वहां बलवा होनेका डर आज भी बना हुआ है। आस्ट्रियाके जानेसे इटलीको क्या लाभ हुआ? नामका ही लाभ हुआ। जिन सुधारोंके लिए जंग मचा वे सुधार हुए नहीं, प्रजाकी हालत सुधरी नहीं।

हिन्दुस्तानकी ऐसी दशा करनेका तो आपका इरादा नहीं ही होगा। मैं मानता हूं कि आपका विचार हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंको सुखी करनेका होगा, यह नहीं कि आप या मैं राजसत्ता ले लूं। अगर ऐसा है तो हमें एक ही विचार करना चाहिये। वह यह कि प्रजा स्वतन्त्र[1] कैसे हो।

आप कबूल करेंगे कि कुछ देशी रियासतोंमें प्रजा कुचली जाती है। वहांके शासक नीचतासे लोगोंको कुचलते हैं। उनका जुल्म अंग्रेजोंके जुल्मसे भी ज्यादा है। ऐसा जुल्म अगर आप हिन्दुस्तानमें चाहते हों, तो हमारी पटरी कभी नहीं बैठेगी।

मेरा स्वदेशाभिमान[2] मुझे यह नहीं सिखाता कि देशी राजाओंके मातहत जिस तरह प्रजा कुचली जाती है उसी तरह उसे कुचलने दिया जाय। मुझमें बल होगा तो मैं देशी राजाओंके जुल्मके खिलाफ और अंग्रेजी जुल्मके खिलाफ जूझूंगा।

स्वदेशाभिमानका अर्थ मैं देशका हित[3] समझता हूं। अगर देशका हित अंग्रेजोंके हाथों होता हो, तो मैं आज अंग्रेजोंको झुककर नमस्कार करूंगा। अगर कोई अंग्रेज कहे कि देशको आजाद करना चाहिये, जुल्मके खिलाफ होना चाहिये और लोगोंकी सेवा करनी चाहिये, तो उस अंग्रेजको मैं हिन्दुस्तानी मानकर उसका स्वागत करूंगा।

फिर, इटलीकी तरह जब हिन्दुस्तानको हथियार मिलें तभी वह लड़ सकता है; पर इस भगीरथ (बहुत बड़े) कामका तो, मालूम होता है, आपने विचार ही नहीं किया है। अंग्रेज गोला-बारूदसे पूरी तरह लैस हैं, इससे मुझे डर नहीं लगता। लेकिन ऐसा तो दीखता है कि उनके

१. आज़ाद। २. हुब्बेवतन। ३. भला।

हथियारोंसे उन्हींके खिलाफ लड़ना हो, तो हिन्दुस्तानको हथियारबन्द करना होगा। अगर ऐसा हो सकता हो, तो इसमें कितने साल लगेंगे? और तमाम हिन्दुस्तानियोंको हथियारबन्द करना तो हिन्दुस्तानको यूरोप-सा बनाने जैसा होगा। अगर ऐसा हुआ तो आज यूरोपके जो बेहाल है वैसे ही हिन्दुस्तानके भी होंगे। थोड़ेमें, हिन्दुस्तानको यूरोपकी सभ्यता अपनानी होगी। ऐसा ही होनेवाला हो तो अच्छी बात यह होगी कि जो अंग्रेज उस सभ्यतामें कुशल हैं, उन्हींको हम यहां रहने दें। उनसे थोड़ा-बहुत झगड़ कर कुछ हक हम पायेंगे, कुछ नहीं पायेंगे और अपने दिन गुजारेंगे।

लेकिन बात तो यह है कि हिन्दुस्तानकी प्रजा कभी हथियार नहीं उठायेगी। न उठाये यह ठीक ही है।

पाठक: आप तो बहुत आगे बढ़ गये। सबके हथियारबंद होनेकी जरूरत नहीं। हम पहले तो कुछ अंग्रेजोंका खून करके आतंक[1] फैलायेंगे। फिर जो थोड़े लोग हथियारबंद होंगे, वे खुल्लमखुल्ला लड़ेंगे। उसमें पहले तो बीस पचीस लाख हिन्दुस्तानी जरूर मरेंगे। लेकिन आखिर हम देशको अंग्रेजोंसे जीत लेंगे। हम गुरीला (डाकुओं जैसी) लड़ाई लड़कर अंग्रेजोंको हरा देंगे।

संपादक: आपका खयाल हिन्दुस्तानकी पवित्र भूमिको राक्षसी[2] बनानेका लगता है। अंग्रेजोंका खून करके हिन्दुस्तानको छुड़ायेंगे, ऐसा विचार करते हुए आपको त्रास क्यों नहीं होता? खून तो हमें अपना करना चाहिये; क्योंकि हम नामर्द बन गये हैं, इसीलिए हम खूनका विचार करते हैं। ऐसा करके आप किसे आजाद करेंगे? हिन्दुस्तानकी प्रजा ऐसा कभी नहीं चाहती। हम जैसे लोग ही, जिन्होंने अधम सभ्यतारूपी भांग पी है, नशेमें ऐसा विचार करते हैं। खून करके जो लोग राज करेंगे, वे प्रजाको सुखी नहीं बना सकेंगे। धींगरा[3]ने जो खून किया है उससे या जो खून हिन्दुस्तानमें हुए हैं उनसे देशको फायदा हुआ है, ऐसा अगर कोई मानता हो तो वह बड़ी भूल करता है। धींगराको मैं देशाभिमानी मानता हूं, लेकिन

---

१. दहशत, त्रास। २. शैतानी। ३. पंजाबी युवक मदनलाल धींगराने जुलाई, १९०९ में लंदनमें कर्नल सर कर्जन वाइलीको गोलीका निशाना बनाया था। उसे फांसीकी सजा मिली थी।

उसका देशप्रेम पागलपनसे भरा था। उसने अपने शरीरका बलिदान गलत तरीकेसे दिया। उससे अंतमें तो देशको नुकसान ही होनेवाला है।

पाठक : लेकिन आपको इतना तो कबूल करना ही होगा कि अंग्रेज इस खूनसे डर गये हैं, और लॉर्ड मॉर्लेने जो कुछ हमें दिया है वह ऐसे डरसे ही दिया है।

संपादक : अंग्रेज जैसे डरपोक प्रजा हैं वैसे बहादुर भी हैं। गोला-बारूदका असर उन पर तुरन्त होता है, ऐसा मैं मानता हूं। संभव है, लॉर्ड मॉर्लेने हमें जो कुछ दिया वह डरसे दिया हो। लेकिन डरसे मिली हुई चीज जब तक डर बना रहता है तभी तक टिक सकती है।

१६

गोला-बारूद

पाठक : डरसे दिया हुआ जब तक डर रहे तभी तक टिक सकता है, यह तो आपने विचित्र बात कही। जो दिया सो दिया। उसमें फिर क्या हेरफेर हो सकता है?

संपादक : ऐसा नहीं है। १८५७ की घोषणा बलवेके अंतमें लोगोंमें शान्ति कायम रखनेके लिए की गई थी। जब शान्ति हो गई और लोग भोले दिलके बन गये तब उसका अर्थ बदल गया। अगर मैं सजाके डरसे चोरी न करूं, तो सजाका डर मिट जाने पर चोरी करनेकी मेरी फिरसे इच्छा होगी और मैं चोरी करूंगा। यह तो बहुत ही साधारण अनुभव[1] है; इससे इनकार नहीं किया जा सकता। हमने मान लिया है कि डांट-डपटकर लोगोंसे काम लिया जा सकता है और इसलिए हम ऐसा करते आये हैं।

पाठक : आपकी यह बात आपके खिलाफ जाती है, ऐसा आपको नहीं लगता? आपको स्वीकार करना होगा कि अंग्रेजोंने खुद जो कुछ हासिल किया है, वह मार-काट करके ही हासिल किया है। आप कह चुके हैं कि (मार-काटसे) उन्होंने जो कुछ हासिल किया है वह बेकार है; यह मुझे

१. तजरबा।

याद है। इससे मेरी दलीलको धक्का नहीं पहुंचता। उन्होंने बेकार (चीज) पानेका सोचा और उसे पाया। मतलब यह कि उन्होंने अपनी मुराद पूरी की। साधन[1] क्या था, इसकी चिन्ता हम क्यों करें? अगर हमारी मुराद अच्छी हो तो क्या उसे हम चाहे जिस साधनसे, मार-काट करके भी, पूरा नहीं करेंगे? चोर मेरे घरमें घुसे तब क्या मैं साधनका विचार करूंगा? मेरा धर्म[2] तो उसे किसी भी तरह बाहर निकालनेका ही होगा।

ऐसा लगता है कि आप यह तो कबूल करते हैं कि हमें सरकारके पास अरजियां भेजनेसे कुछ नहीं मिला है और न आगे कभी मिलनेवाला है। तो फिर उन्हें मारकर हम क्यों न लें? जरूरत हो उतनी मारका डर हम हमेशा बनाये रखेंगे। बच्चा अगर आगमें पैर रखे और उसे आगसे बचानेके लिए हम उस पर रोक लगायें, तो आप भी इसे दोष नहीं मानेंगे। किसी भी तरह हमें अपना काम पूरा कर लेना है।

संपादक: आपने दलील तो अच्छी की। वह ऐसी है कि बहुतोंने उसमें धोखा खाया है। मैं भी ऐसी ही दलील करता था। लेकिन अब मेरी आंखें खुल गई हैं और मैं अपनी गलती समझ सकता हूं। आपको वह गलती बतानेकी कोशिश करूंगा।

पहले तो इस दलील पर विचार करें कि अंग्रेजोंने जो कुछ पाया वह मार-काट करके पाया, इसलिए हम भी वैसा ही करके मनचाही चीज पायें। अंग्रेजोंने मार-काट की और हम भी कर सकते हैं, यह बात तो ठीक है। लेकिन मार-काटसे जैसी चीज उन्हें मिली वैसी ही हम भी ले सकते हैं। आप कबूल करेंगे कि वैसी चीज हमें नहीं चाहिये।

आप मानते हैं कि साधन और साध्य — जरिया और मुराद — के बीच कोई संबंध नहीं है। यह बहुत बड़ी भूल है। इस भूलके कारण जो लोग धार्मिक[3] कहलाते हैं, उन्होंने घोर कर्म किये हैं। यह तो धतूरेका पौधा लगाकर मोगरेके फूलकी इच्छा करने जैसा हुआ। मेरे लिए समुद्र पार करनेका साधन जहाज ही हो सकता है। अगर मैं पानीमें बैलगाड़ी डाल दूं, तो वह गाड़ी और मैं दोनों समुद्रके तले पहुंच जायेंगे। जैसे देव वैसी पूजा — यह वाक्य[4] बहुत सोचने लायक है। उसका गलत

---

१. जरिया। २. फ़र्ज। ३. दीनदार। ४. फ़िक़रा।

अर्थ करके लोग भुलावेमें पड़ गये हैं। साधन बीज है और साध्य — हासिल करनेकी चीज — पेड़ है। इसलिए जितना सम्बन्ध बीज और पेड़के बीच है, उतना ही साधन और साध्यके बीच है। शैतानको भजकर मैं ईश्वर-भजनका फल पाऊं, यह कभी हो ही नहीं सकता। इसलिए यह कहना कि हमें तो ईश्वरको ही भजना है, साधन भले शैतान हो, बिलकुल अज्ञानकी बात है। जैसी करनी वैसी भरनी।

अंग्रेजोंने मार-काट करके १८३३ में वोटके (मतके) विशेष अधिकार पाये। क्या मार-काट करके वे अपना फ़र्ज समझ सके? उनकी मुराद अधिकार पानेकी थी, इसलिए उन्होंने मार-काट मचाकर अधिकार पा लिये। सच्चे अधिकार तो फ़र्जके फल[1] हैं; वे अधिकार उन्होंने नहीं पाये। नतीजा यह हुआ कि सबने अधिकार पानेका प्रयत्न किया, लेकिन फ़र्ज सो गया। जहां सभी अधिकारकी बात करें, वहां कौन किसको दे? वे कोई भी फ़र्ज अदा नहीं करते, ऐसा कहनेका मतलब यहां नहीं है। लेकिन जो अधिकार वे मांगते थे उन्हें हासिल करके उन्होंने वे फ़र्ज पूरे नहीं किये जो उन्हें करने चाहिये थे। उन्होंने योग्यता प्राप्त नहीं की, इसलिए उनके अधिकार उनकी गरदन पर जूएकी तरह सवार हो बैठे हैं। इसलिए जो कुछ उन्होंने पाया है, वह उनके साधनका ही परिणाम[2] है। जैसी चीज उन्हें चाहिये थी वैसे साधन उन्होंने काममें लिये।

मुझे अगर आपसे आपकी घड़ी छीन लेनी हो, तो बेशक आपके साथ मुझे मार-पीट करनी होगी। लेकिन अगर मुझे आपकी घड़ी खरीदनी हो, तो आपको दाम देने होंगे। अगर मुझे बख्शिशके तौर पर आपकी घड़ी लेनी होगी, तो मुझे आपसे विनय[3] करनी होगी। घड़ी पानेके लिए मैं जो साधन काममें लूंगा, उसके अनुसार वह चोरीका माल, मेरा माल या बख्शिशकी चीज होगी। तीन साधनोंके तीन अलग परिणाम आयेंगे। तब आप कैसे कह सकते हैं कि साधनकी कोई चिन्ता नहीं?

अब चोरको घरमें से निकालनेकी मिसाल लें। मैं आपसे इसमें सहमत नहीं हूं कि चोरको निकालनेके लिए चाहे जो साधन काममें लिया जा सकता है।

---

१. नतीजे। २. नतीजा। ३. आजिजी।

अगर मेरे घरमें मेरा पिता चोरी करने आयेगा, तो मैं एक साधन काममें लूंगा। अगर कोई मेरी पहचानका चोरी करने आयेगा, तो मैं वही साधन काममें नहीं लूंगा। और कोई अनजान आदमी आयेगा, तो मैं तीसरा साधन काममें लूंगा। अगर वह गोरा हो तो एक साधन और हिन्दुस्तानी हो तो दूसरा साधन काममें लाना चाहिये, ऐसा भी शायद आप कहेंगे। अगर कोई मुर्दार लड़का चोरी करने आया होगा, तो मैं बिलकुल दूसरा ही साधन काममें लूंगा। अगर वह मेरी बराबरीका होगा, तो और ही कोई साधन मैं काममें लूंगा। और अगर वह हथियारबंद तगड़ा आदमी होगा, तो मैं चुपचाप सो रहूंगा। इसमें पितासे लेकर ताकतवर आदमी तक अलग अलग साधन इस्तेमाल किये जायेंगे। पिता होगा तो भी मुझे लगता है कि मैं सो रहूंगा और हथियारसे लैस कोई होगा तो भी मैं सो रहूंगा। पितामें भी बल है, हथियारबंद आदमीमें भी बल है। दोनों बलोंके बस होकर मैं अपनी चीजको जाने दूंगा। पिताका बल मुझे दयासे रुलायेगा। हथियारबंद आदमीका बल मेरे मनमें गुस्सा पैदा करेगा; हम कट्टर दुश्मन हो जायेंगे। ऐसी मुश्किल हालत है। इन मिसालोंसे हम दोनों साधनोंके निर्णय[1] पर तो नहीं पहुंच सकेंगे। मुझे तो सब चोरोंके बारेमें क्या करना चाहिये यह सूझता है। लेकिन उस इलाजसे आप घबरा जायेंगे, इसलिए मैं आपके सामने उसे नहीं रखता। आप इसे समझ लें; और अगर नहीं समझेंगे तो हर वक्त आपको अलग साधन काममें लेने होंगे। लेकिन आपने इतना तो देखा कि चोरको निकालनेके लिए चाहे जो साधन काम नहीं देगा; और जैसा साधन आपका होगा उसके मुताबिक नतीजा आयेगा। आपका धर्म किसी भी साधनसे चोरको घरसे निकालनेका हरगिज नहीं है।

जरा आगे बढ़ें। वह हथियारबंद आदमी आपकी चीज ले गया है। आपने उसे याद रखा है। आपके मनमें उस पर गुस्सा भरा है। आप उस लुच्चेको अपने लिए नहीं, लेकिन लोगोंके कल्याणके लिए सजा देना चाहते हैं। आपने कुछ आदमी जमा किये। उसके घर पर आपने धावा बोलनेका निश्चय किया। उसे मालूम हुआ। वह भागा। उसने

१. फ़ैसला।

दूसरे लुटेरे जमा किये। वह भी खीजा हुआ है। अब तो उसने आपका घर दिन-दहाड़े लूटनेका संदेशा आपको भेजा है। आप उसके मुकाबलेके लिए तैयार बैठे हैं। इस बीच लुटेरा आपके आसपासके लोगोंको हैरान करता है। वे आपसे शिकायत करते हैं। आप कहते हैं: "यह सब मैं आप ही के लिए तो करता हूं। मेरा माल गया उसकी तो कोई बिसात ही नहीं।" लोग कहते हैं: "पहले तो वह हमें लूटता नहीं था। आपने जबसे उसके साथ लड़ाई शुरू की है तभीसे उसने यह काम शुरू किया है।" आप दुविधामें फंस जाते हैं। गरीबोंके ऊपर आपको रहम है। उनकी बात सही है। अब क्या किया जाय? क्या लुटेरेको छोड़ दिया जाय? इससे तो आपकी इज़्ज़त चली जायेगी। इज़्ज़त सबको प्यारी होती है। आप गरीबोंसे कहते हैं: "कोई फिक्र नहीं। आइये, मेरा धन आपका ही है। मैं आपको हथियार देता हूं। मैं आपको उनका उपयोग सिखाऊंगा। आप उस बदमाशको मारिये, छोड़िये नहीं।" यों लड़ाई बढ़ी। लुटेरे बढ़े। लोगोंने खुद होकर मुसीबत मोल ली। चोरसे बदला लेनेका परिणाम यह आया कि नींद बेचकर जागरण मोल लिया। जहां शांति थी वहां अशांति पैदा हुई। पहले तो जब मौत आती तभी मरते थे। अब तो सदा ही मरनेके दिन आये। लोग हिम्मत हारकर पस्तहिम्मत[१] बने। इसमें मैंने बढ़ा-चढ़ाकर कुछ नहीं कहा है, यह आप धीरजसे सोचेंगे तो देख सकेंगे। यह एक साधन हुआ।

अब दूसरे साधनकी जांच करें। चोरको आप अज्ञान[२] मान लेते हैं। कभी मौका मिलने पर उसे समझानेका आपने सोचा है। आप यह भी सोचते हैं कि वह भी हमारे जैसा आदमी है। उसने किस इरादेसे चोरी की, यह आपको क्या मालूम? आपके लिए अच्छा रास्ता तो यही है कि जब मौका मिले तब आप उस आदमीके भीतरसे चोरीका बीज ही निकाल दें। ऐसा आप सोच रहे हैं, इतनेमें वे भाई साहब फिरसे चोरी करने आते हैं। आप नाराज नहीं होते। आपको उस पर दया आती है। आप सोचते हैं कि यह आदमी रोगी है। आप खिड़की-दरवाजे खुले कर देते हैं। आप अपनी सोनेकी जगह बदल देते हैं। आप अपनी चीजें

---

१. नाहिम्मत, कायर। २. नासमझ।

झट ले जाई जा सकें इस तरह रख देते हैं। चोर आता है। वह घबराता है। यह सब उसे नया ही मालूम होता है। माल तो वह ले जाता है, लेकिन उसका मन चक्करमें पड़ जाता है। वह गांवमें जांच-पड़ताल करता है। आपकी दयाके बारेमें उसको मालूम होता है। वह पछताता है और आपसे माफी मांगता है। आपकी चीजें वापस ले आता है। वह चोरीका धंधा छोड़ देता है। आपका सेवक बन जाता है। आप उसे कामधंधेमें लगा देते हैं। यह दूसरा साधन है।

आप देखते हैं कि अलग अलग साधनोंके अलग अलग नतीजे आते हैं। सब चोर ऐसा ही बरताव करेंगे या सबमें आपका-सा दयाभाव होगा, ऐसा मैं इसमें साबित नहीं करना चाहता। लेकिन यही दिखाना चाहता हूं कि अच्छे नतीजे लानेके लिए अच्छे ही साधन चाहिये। और अगर सब नहीं तो ज्यादातर मामलोंमें हथियार-बलसे दयाबल ज्यादा ताकतवर साबित होता है। हथियारमें हानि[1] है, दयामें कभी नहीं।

अब अरजीकी बात लें। जिसके पीछे बल नहीं है वह अरजी निकम्मी है, इसमें कोई शक नहीं। फिर भी स्व० न्यायमूर्ति रानडे कहते थे कि अरजी लोगोंको तालीम देनेका एक साधन है। उससे लोगोंको अपनी स्थिति[2] का भान कराया जा सकता है और राजकर्ता[3] को चेतावनी दी जा सकती है। यों सोचें तो अरजी निकम्मी चीज नहीं है। बराबरीका आदमी अरजी करेगा तो वह उसकी नम्रताकी निशानी मानी जायगी। गुलाम अरजी करेगा तो वह उसकी गुलामीकी निशानी होगी। जिस अरजीके पीछे बल है वह बराबरीके आदमीकी अरजी है; और वह अपनी मांग अरजीके रूपमें रखता है, यह उसकी खानदानियतको बताता है।

अरजीके पीछे दो तरहके बल होते हैं। एक है: "अगर आप नहीं देंगे तो हम आपको मारेंगे।" यह गोला-बारूदका बल है। इसका बुरा नतीजा हम देख चुके। दूसरा बल यह है: "अगर आप नहीं देंगे तो हम आपके अरजदार नहीं रहेंगे। हम अरजदार होंगे तो आप बादशाह बने रहेंगे। हम आपके साथ कोई व्यवहार नहीं रखेंगे।" इस बलको चाहे दयाबल कहें, चाहे आत्मबल कहें या सत्याग्रह कहें। यह बल अविनाशी[4] है और

---

१. नुकसान। २. हालत। ३. हाकिम। ४. लाफ़ानी।

इस वलका उपयोग करनेवाला अपनी हालतको वरावर समझता है। इसका समावेश हमारे वुजुर्गोंने 'एक नाहीं सव रोगोंकी दवा' में किया है। यह वल जिसमें है उसका हथियार-वल कुछ नहीं विगाड़ सकता।

वच्चा अगर आगमें पैर रखे, तो उसको दवानेकी मिसालकी छान-वीन करनेमें तो आप हार जायेंगे। वच्चेके साथ आप क्या करेंगे? मान लीजिये कि वच्चा ऐसा जोर करे कि आपको मारकर वह आगमें जा पड़े। तव तो आगमें पड़े विना वह रहेगा ही नहीं। इसका उपाय आपके पास यह है: या तो आगमें पड़नेसे रोकनेके लिए आप उसके प्राण ले लें, या उसका आगमें पड़ना आपसे देखा नहीं जाता इसलिए आप स्वयं आगमें पड़कर अपनी जान दे दें। आप वच्चेके प्राण तो नहीं ही लेंगे। आपमें अगर संपूर्ण दयाभाव न हो, तो मुमकिन है कि आप अपने प्राण नहीं देंगे। तो फिर लाचारीसे आप वच्चेको आगमें कूदने देंगे। इस तरह आप वच्चे पर हथियार-वलका उपयोग नहीं करते हैं। वच्चेको आप और किसी तरह रोक सकें तो रोकेंगे; और वह वल कम दर्जेका लेकिन हथियार-वल ही होगा ऐसा भी आप न समझ लें। वह वल और ही प्रकार[1] का है। उसीको समझ लेना है।

वच्चेको रोकनेमें आप सिर्फ वच्चेका स्वार्थ देखते हैं। जिसके ऊपर आप अंकुश रखना चाहते हैं, उस पर उसके स्वार्थके लिए ही अंकुश रखेंगे। यह मिसाल अंग्रेजों पर जरा भी लागू नहीं होती। आप अंग्रेजों पर जो हथियार-वलका उपयोग करना चाहते हैं, उसमें आप अपना ही यानी प्रजाका स्वार्थ देखते हैं। उसमें दया जरा भी नहीं है। अगर आप यों कहें कि अंग्रेज जो अधम — नीच काम करते हैं वह आग है, वे आगमें अज्ञानके कारण जाते हैं और आप दयासे अज्ञानीको यानी वच्चेको उससे वचाना चाहते हैं, तो इस प्रयोगको आजमानेके लिए आपको जहां-जहां जो भी आदमी नीच काम करता होगा वहां वहां पहुंचना होगा और सामनेवालेके — वच्चेके — प्राण लेनेके वजाय अपने प्राणोंकी आहुति देनी पड़ेगी। इतना पुरुषार्थ[2] आप करना चाहें तो कर सकते हैं, आप स्वतंत्र हैं। पर यह वात विलकुल असंभव है।

---

१. तरह। २. वड़ा काम।

१७
सत्याग्रह — आत्मबल

पाठक : आप जिस सत्याग्रह या आत्मबलकी बात करते हैं, उसका इतिहासमें कोई प्रमाण[1] है? आज तक दुनियाका एक भी राष्ट्र इस बलसे ऊपर चढ़ा हो, ऐसा देखनेमें नहीं आता। मार-काटके बिना बुरे लोग सीधे रहेंगे ही नहीं, ऐसा विश्वास अभी भी मेरे मनमें बना हुआ है।

संपादक : कवि तुलसीदासजीने लिखा है :

दया धरमको मूल है, पापमूल* अभिमान,
तुलसी दया न छांड़िये, जब लग घटमें प्रान।

मुझे तो यह वाक्य शास्त्र-वचन जैसा लगता है। जैसे दो और दो चार ही होते हैं, उतना ही भरोसा मुझे ऊपरके वचन पर है। दयाबल आत्मबल है, सत्याग्रह है। और इस बलके प्रमाण पग पग पर दिखाई देते हैं। अगर यह बल नहीं होता, तो पृथ्वी रसातल (सात पातालोंमें से एक)में पहुंच गई होती।

लेकिन आप तो इतिहासका प्रमाण चाहते हैं। इसके लिए हमें इतिहासका अर्थ जानना होगा।

'इतिहास'का शब्दार्थ है : 'ऐसा हो गया।' ऐसा अर्थ करें तो आपको सत्याग्रहके कई प्रमाण दिये जा सकेंगे। 'इतिहास' जिस अंग्रेजी शब्दका तरजुमा है और जिस शब्दका अर्थ बादशाहों या राजाओंकी तवारीख होता है, उसका अर्थ लेनेसे सत्याग्रहका प्रमाण नहीं मिल सकता। जस्तेकी खानमें आप अगर चांदी ढूंढ़ने जायें, तो वह कैसे मिलेगी? 'हिस्टरी' में दुनियाके कोलाहलकी ही कहानी मिलेगी। इसलिए गोरे लोगोंमें कहावत है कि जिस राष्ट्रकी 'हिस्टरी' (कोलाहल) नहीं है वह राष्ट्र सुखी है। राजा लोग कैसे खेलते थे, कैसे खून करते थे, कैसे वैर रखते

१. सबूत।

* गांधीजीने 'देहमूल' पाठ लिया है। — अनुवादक

थे, यह सब 'हिस्टरी' में मिलता है। अगर यही इतिहास होता, अगर इतना ही हुआ होता, तव तो यह दुनिया कवकी डूव गई होती। अगर दुनियाकी कथा लड़ाईसे शुरू हुई होती, तो आज एक भी आदमी ज़िंदा नहीं रहता। जो प्रजा लड़ाईका ही भोग (शिकार) वन गई, उसकी ऐसी ही दशा हुई है। आस्ट्रेलियाके हव्शी लोगोंका नामोनिशान मिट गया है। आस्ट्रेलियाके गोरोंने उनमें से शायद ही किसीको जीने दिया है। जिनकी जड़ ही खतम हो गई, वे लोग सत्याग्रही नहीं थे। जो ज़िंदा रहेंगे वे देखेंगे कि आस्ट्रेलियाके गोरे लोगोंके भी यही हाल होंगे। 'जो तलवार चलाते हैं उनकी मौत तलवारसे ही होती है।' हमारे यहां ऐसी कहावत है कि 'तैराककी मौत पानीमें'।

दुनियामें इतने लोग आज भी ज़िन्दा हैं, यह वताता है कि दुनियाका आधार हथियार-वल पर नहीं है, परन्तु सत्य, दया या आत्म-वल पर है। इसका सवसे वड़ा प्रमाण तो यही है कि दुनिया लड़ाईके हंगामोंके वावजूद टिकी हुई है। इसलिए लड़ाईके वलके वजाय दूसरा ही वल उसका आधार है।

हज़ारों वल्कि लाखों लोग प्रेमके वस रहकर अपना जीवन वसर करते हैं। करोड़ों कुटुम्वोंका क्लेश[1] प्रेमकी भावनामें समा जाता है, डूव जाता है। सैंकड़ों राष्ट्र मेलजोलसे रहे हैं, इसको 'हिस्टरी' नोट नहीं करती; 'हिस्टरी' कर भी नहीं सकती। जव इस दयाकी, प्रेमकी और सत्यकी धारा रुकती है, टूटती है, तभी इतिहासमें वह लिखा जाता है। एक कुटुम्वके दो भाई लड़े। इसमें एकने दूसरेके खिलाफ सत्याग्रहका वल काममें लिया। दोनों फिरसे मिल-जुलकर रहने लगे। इसका नोट कौन लेता है? अगर दोनों भाइयोंमें वकीलोंकी मददसे या दूसरे कारणोंसे वैरभाव वढ़ता और वे हथियारों या अदालतों (अदालत एक तरहका हथियार-वल, शरीर-वल ही है।) के ज़रिये लड़ते, तो उनके नाम अखवारोंमें छपते, अड़ोस-पड़ोसके लोग जानते और शायद इतिहासमें भी लिखे जाते। जो वात कुटुम्वों, जमातों और इतिहासके वारेमें सच है, वही राष्ट्रोंके वारेमें भी समझ लेना चाहिये। कुटुम्वके लिए एक कानून

१. दुख।

और राष्ट्रके लिए दूसरा, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है। 'हिस्टरी' अस्वाभाविक[1] बातोंको दर्ज करती है। सत्याग्रह स्वाभाविक है, इसलिए उसे दर्ज करनेकी जरूरत ही नहीं है।

पाठक : आपके कहे मुताबिक तो यही समझमें आता है कि सत्याग्रहकी मिसालें इतिहासमें नहीं लिखी जा सकतीं। इस सत्याग्रहको ज्यादा समझनेकी जरूरत है। आप जो कुछ कहना चाहते हैं, उसे ज्यादा साफ शब्दोंमें कहेंगे तो अच्छा होगा।

संपादक : सत्याग्रह या आत्मबलको अंग्रेजीमें 'पैसिव रेजिस्टेन्स' कहा जाता है। जिन लोगोंने अपने अधिकार पानेके लिए खुद दुख सहन किया था, उनके दुख सहनेके ढंगके लिए यह शब्द बरता गया है। उसका ध्येय[2] लड़ाईके ध्येयसे उलटा है। जब मुझे कोई काम पसन्द न आये और वह काम मैं न करूं, तो उसमें मैं सत्याग्रह या आत्मबलका उपयोग करता हूं।

मिसालके तौर पर, मुझे लागू होनेवाला कोई कानून सरकारने पास किया। वह कानून मुझे पसन्द नहीं है। अब अगर मैं सरकार पर हमला करके यह कानून रद करवाता हूं, तो कहा जायगा कि मैंने शरीर-बलका उपयोग किया। अगर मैं उस कानूनको मंजूर ही न करूं और उस कारणसे होनेवाली सजा भुगत लूं, तो कहा जायगा कि मैंने आत्मबल या सत्याग्रहसे काम लिया। सत्याग्रहमें मैं अपना ही बलिदान देता हूं।

यह तो सब कोई कहेंगे कि दूसरेका भोग — बलिदान लेनेसे अपना भोग देना ज्यादा अच्छा है। इसके सिवा, सत्याग्रहसे लड़ते हुए अगर लड़ाई गलत ठहरी, तो सिर्फ लड़ाई छेड़नेवाला ही दुख भोगता है। यानी अपनी भूलकी सजा वह खुद भोगता है। ऐसी कई घटनायें हुई हैं जिनमें लोग गलतीसे शामिल हुए थे। कोई भी आदमी दावेसे यह नहीं कह सकता कि फलां काम खराब ही है। लेकिन जिसे वह खराब लगा, उसके लिए तो वह खराब ही है। अगर ऐसा ही है तो फिर उसे वह काम नहीं करना

१. गैर-कुदरती। २. मकसद।

चाहिये और उसके लिए दुख भोगना, कष्ट सहन करना चाहिये। यही सत्याग्रहकी कुंजी है।

पाठक: तब तो आप कानूनके खिलाफ होते हैं! यह बेवफाई कही जायगी। हमारी गिनती हमेशा कानूनको माननेवाली प्रजामें होती है। आप तो 'एक्स्ट्रीमिस्ट' से भी आगे बढ़ते दीखते हैं। 'एक्स्ट्रीमिस्ट' कहता है कि जो कानून बन चुके हैं उन्हें तो मानना ही चाहिये; लेकिन कानून खराब हों तो उनके बनानेवालोंको मारकर भगा देना चाहिये।

संपादक: मैं आगे बढ़ता हूं या पीछे रहता हूं, इसकी परवाह न आपको होनी चाहिये, न मुझे। हम तो जो अच्छा है उसे खोजना चाहते हैं और उसके मुताबिक बरतना चाहते हैं।

हम कानूनको माननेवाली प्रजा हैं, इसका सही अर्थ तो यह है कि हम सत्याग्रही प्रजा हैं। कानून जब पसन्द न आयें तब हम कानून बनानेवालोंका सिर नहीं तोड़ते, बल्कि उन्हें रद करानेके लिए खुद उपवास करते हैं—खुद दुख उठाते हैं।

हमें अच्छे या बुरे कानूनको मानना चाहिये, ऐसा अर्थ तो आजकलका है। पहले ऐसा नहीं था। तब चाहे जिस कानूनको लोग तोड़ते थे और उसकी सजा भोगते थे।

कानून हमें पसन्द न हों तो भी उनके मुताबिक चलना चाहिये, यह सिखावन मर्दानगीके खिलाफ है, धर्मके खिलाफ है और गुलामीकी हद है।

सरकार तो कहेगी कि हम उसके सामने नंगे होकर नाचें। तो क्या हम नाचेंगे? अगर मैं सत्याग्रही होऊं तो सरकारसे कहूंगा: "यह कानून आप अपने घरमें रखिये। मैं न तो आपके सामने नंगा होनेवाला हूं और न नाचनेवाला हूं।" लेकिन हम ऐसे असत्याग्रही हो गये हैं कि सरकारके जुल्मके सामने झुककर नंगे होकर नाचनेसे भी ज्यादा नीच काम करते हैं।

जिस आदमीमें सच्ची इन्सानियत है, जो खुदासे ही डरता है, वह और किसीसे नहीं डरेगा। दूसरेके बनाये हुए कानून उसके लिए बंधनकारक नहीं होते। बेचारी सरकार भी नहीं कहती कि 'तुम्हें ऐसा करना ही

पड़ेगा।' वह कहती है कि 'तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हें सजा होगी।' हम अपनी अधम दशाके कारण मान लेते हैं कि हमें 'ऐसा ही करना चाहिये', यह हमारा फ़र्ज है, यह हमारा धर्म है।

अगर लोग एक बार सीख लें कि जो कानून हमें अन्यायी[1] मालूम हो उसे मानना नामर्दगी है, तो हमें किसीका भी जुल्म बांध नहीं सकता। यही स्वराज्यकी कुंजी है।

ज्यादा लोग जो कहें उसे थोड़े लोगोंको मान लेना चाहिये, यह तो अनीश्वरी[2] बात है, एक वहम है। ऐसी हजारों मिसालें मिलेंगी, जिनमें बहुतोंने जो कहा वह गलत निकला हो और थोड़े लोगोंने जो कहा वह सही निकला हो। सारे सुधार बहुतसे लोगोंके खिलाफ जाकर कुछ लोगोंने ही दाखिल करवाये हैं। ठगोंके गांवमें अगर बहुतसे लोग यह कहें कि ठगविद्या सीखनी ही चाहिये, तो क्या कोई साधु ठग बन जायगा? हरगिज नहीं। अन्यायी कानूनको मानना चाहिये, यह वहम जब तक दूर नहीं होता तब तक हमारी गुलामी जानेवाली नहीं है। और इस वहमको सिर्फ सत्याग्रही ही दूर कर सकता है।

शरीर-बलका उपयोग करना, गोला-बारूद काममें लाना, हमारे सत्याग्रहके कानूनके खिलाफ है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि हमें जो पसंद है वह दूसरे आदमीसे हम (जबरन्) करवाना चाहते हैं। अगर यह सही हो तो फिर वह सामनेवाला आदमी भी अपनी पसंदका काम हमसे करवानेके लिए हम पर गोला-बारूद चलानेका हकदार है। इस तरह तो हम कभी एकराय पर पहुंचेंगे ही नहीं। कोल्हूके बैलकी तरह आंखों पर पट्टी बांधकर भले ही हम मान लें कि हम आगे बढ़ते हैं। लेकिन दरअसल तो बैलकी तरह हम गोल गोल चक्कर ही काटते रहते हैं। जो लोग ऐसा मानते हैं कि जो कानून खुदको नापसन्द है उसे माननेके लिए आदमी बंधा हुआ नहीं है, उन्हें तो सत्यग्रहको ही सही साधन[3] मानना चाहिये; वरना बड़ा विकट[4] नतीजा आयेगा।

१. गैर-इन्साफ़वाला। २. ला-खुदाई। ३. जरिया। ४. खतर-नाक।

पाठक : आप जो कहते हैं उस परसे मुझे लगता है कि सत्याग्रह कमज़ोर आदमियोंके लिए काफी कामका है। लेकिन जब वे बलवान बन जायें तब तो उन्हें तोप (हथियार) ही चलाना चाहिये।

संपादक : यह तो आपने बड़े अज्ञानकी बात कही। सत्याग्रह सबसे बड़ा — सर्वोपरि बल है। वह जब तोपबलसे ज्यादा काम करता है, तो फिर कमजोरोंका हथियार कैसे माना जायगा? सत्याग्रहके लिए जो हिम्मत और बहादुरी चाहिये, वह तोपका बल रखनेवालेके पास हो ही नहीं सकती। क्या आप यह मानते हैं कि डरपोक और कमज़ोर आदमी नापसन्द कानूनको तोड़ सकेगा? 'एक्स्ट्रीमिस्ट' तोपबल — पशुबलके हिमायती हैं। वे क्यों कानूनको माननेकी बात कर रहे हैं? मैं उनका दोष नहीं निकालता। वे दूसरी कोई बात कर ही नहीं सकते। वे खुद जब अंग्रेजोंको मारकर राज्य करेंगे तब आपसे और हमसे (जबरन्) कानून मनवाना चाहेंगे। उनके तरीकेके लिए यही कहना ठीक है। लेकिन सत्याग्रही तो कहेगा कि जो कानून उसे पसन्द नहीं हैं उन्हें वह स्वीकार नहीं करेगा, फिर चाहे उसे तोपके मुंह पर बांधकर उसकी धज्जियां क्यों न उड़ा दी जायं!

आप क्या मानते हैं? तोप चलाकर सैकड़ोंको मारनेमें हिम्मतकी ज़रूरत है या हंसते-हंसते तोपके मुंह पर बंध कर धज्जियां उड़ने देनेमें हिम्मतकी ज़रूरत है? खुद मौतको हथेलीमें रखकर जो चलता-फिरता है वह रणवीर है या दूसरोंकी मौतको अपने हाथमें रखता है वह रणवीर है?

यह निश्चित मानिये कि नामर्द आदमी घड़ीभरके लिए भी सत्याग्रही नहीं रह सकता।

हां, यह सही है कि शरीरसे जो दुबला हो वह भी सत्याग्रही हो सकता है। एक आदमी भी (सत्याग्रही) हो सकता है और लाखों लोग भी हो सकते हैं। मर्द भी सत्याग्रही हो सकता है; औरत भी हो सकती है। उसे अपना लश्कर तैयार करनेकी ज़रूरत नहीं रहती। उसे पहलवानोंकी कुश्ती सीखनेकी ज़रूरत नहीं रहती। उसने अपने मनको काबूमें किया कि फिर वह वनराज — सिंहकी तरह गर्जना कर सकता है; और जो उसके दुश्मन बन बैठे हैं उनके दिल इस गर्जनासे फट जाते हैं।

सत्याग्रह ऐसी तलवार है, जिसके दोनों ओर धार है। उसे चाहे जैसे काममें लिया जा सकता है। जो उसे चलाता है और जिस पर वह चलाई जाती है, वे दोनों सुखी होते हैं। वह खून नहीं निकालती, लेकिन उससे भी बड़ा परिणाम ला सकती है। उसको जंग नहीं लग सकता। उसे कोई (चुराकर) ले नहीं जा सकता। अगर सत्याग्रही दूसरे सत्याग्रहीके साथ होड़में उतरता है, तो उसमें उसे थकान लगती ही नहीं। सत्याग्रहीकी तलवारको म्यानकी ज़रूरत नहीं रहती। उसे कोई छीन नहीं सकता। फिर भी सत्याग्रहको आप कमजोरोंका हथियार मानें; तब तो उसे अंधेर ही कहा जायगा।

पाठक: आपने कहा कि वह हिन्दुस्तानका खास हथियार है। तो क्या हिन्दुस्तानमें तोपके बलका कभी उपयोग नहीं हुआ है?

संपादक: आप हिन्दुस्तानका अर्थ मुट्ठीभर राजा करते हैं। मेरे मन तो हिन्दुस्तानका अर्थ वे करोड़ों किसान हैं, जिनके सहारे राजा और हम सब जी रहे हैं।

राजा तो हथियार काममें लायेंगे ही। उनका वह रिवाज ही हो गया है। उन्हें हुक्म चलाना है। लेकिन हुक्म माननेवालेको तोपबलकी जरूरत नहीं है। दुनियाके ज्यादातर लोग हुक्म माननेवाले हैं। उन्हें या तो तोपबल या सत्याग्रहका बल सिखाना चाहिये। जहां वे तोपबल सीखते हैं वहां राजा-प्रजा दोनों पागल जैसे हो जाते हैं। जहां हुक्म माननेवालोंने सत्याग्रह करना सीखा है वहां राजाका जुल्म उसकी तीन गजकी तलवारसे आगे नहीं जा सकता; और हुक्म माननेवालोंने अन्यायी हुक्मकी परवाह भी नहीं की है। किसान किसीके तलवार-बलके बस न तो कभी हुए हैं, और न होंगे। वे तलवार चलाना नहीं जानते; न किसीकी तलवारसे वे डरते हैं। वे मौतको हमेशा अपना तकिया बनाकर सोनेवाली महान प्रजा हैं। उन्होंने मौतका डर छोड़ दिया है, इसलिए सबका डर छोड़ दिया है। यहां मैं कुछ बढ़ा-चढ़ाकर तसवीर खींचता हूं, यह ठीक है। लेकिन हम जो तलवारके बलसे चकित[1] हो गये हैं, उनके लिए यह कुछ ज्यादा नहीं है।

---

१. दंग।

बात यह है कि किसानोंने, प्रजा-मंडलोंने अपने और राज्यके कारोबारमें सत्याग्रहको काममें लिया है। जब राजा जुल्म करता है तब प्रजा रूठती है। यह सत्याग्रह ही है।

मुझे याद है कि एक रियासतमें रैयतको अमुक हुक्म पसन्द नहीं आया, इसलिए रैयतने हिजरत करना — गांव खाली करना — शुरू कर दिया। राजा घबड़ाये। उन्होंने रैयतसे माफी मांगी और हुक्म वापस ले लिया। ऐसी मिसालें तो बहुत मिल सकती हैं। लेकिन वे ज्यादातर भारत-भूमिकी ही उपज होंगी। ऐसी रैयत जहां है वहीं स्वराज्य है। इसके बिना स्वराज्य कुराज्य है।

पाठक: तो क्या आप यह कहेंगे कि शरीरको कसनेकी ज़रूरत ही नहीं है?

संपादक: ऐसा मैं कभी नहीं कहूंगा। शरीरको कसे बिना सत्याग्रही होना मुश्किल है। अकसर जिन शरीरोंको गलत लाड़ लड़ा कर या सहलाकर कमज़ोर बना दिया गया है, उनमें रहनेवाला मन भी कमज़ोर होता है। और जहां मनका बल नहीं है वहां आत्मबल कैसे हो सकता है? हमें बाल-विवाह वगैराके कुरिवाजको और ऐश-आरामकी बुराईको छोड़कर शरीरको कसना ही होगा। अगर मैं मरियल और कमज़ोर आदमीको यकायक तोपके मुंह पर खड़ा हो जानेके लिए कहूं, तो लोग मेरी हंसी उड़ायेंगे।

पाठक: आपके कहनेसे तो ऐसा लगता है कि सत्याग्रही होना मामूली बात नहीं है; और अगर ऐसा है तो कोई आदमी सत्याग्रही कैसे बन सकता है, यह आपको समझाना होगा।

संपादक: सत्याग्रही होना आसान है। लेकिन जितना वह आसान है उतना ही मुश्किल भी है। चौदह बरसका एक लड़का सत्याग्रही हुआ है, यह मेरे अनुभवकी बात है। रोगी आदमी सत्याग्रही हुए हैं, यह भी मैंने देखा है। मैंने यह भी देखा है कि जो लोग शरीरसे बलवान थे और दूसरी बातोंमें भी सुखी थे, वे सत्याग्रही नहीं हो सके।

अनुभवसे मैं देखता हूं कि जो देशके भलेके लिए सत्याग्रही होना चाहता है, उसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये, गरीबी अपनानी चाहिये,

सत्यका पालन तो करना ही चाहिये और हर हालतमें अभय[1] बनना चाहिये।

ब्रह्मचर्य एक महान व्रत है, जिसके बिना मन मजबूत नहीं होता। ब्रह्मचर्यका पालन न करनेसे मनुष्य वीर्यवान नहीं रहता, नामर्द और कमजोर हो जाता है। जिसका मन विषय[2]में भटकता है, वह क्या वीर मारेगा? यह बात अनगिनत मिसालोंसे साबित की जा सकती है। तब सवाल यह उठता है कि घर-संसारीको क्या करना चाहिये। लेकिन ऐसा सवाल उठनेकी कोई जरूरत नहीं। घर-संसारीने जो संग किया (स्त्रीकी सोहबत की) वह विषय-भोग नहीं है, ऐसा कोई नहीं कहेगा। सन्तान पैदा करनेके लिए ही अपनी स्त्रीका संग करनेकी बात कही गयी है। और सत्याग्रहीको संतान पैदा करनेकी इच्छा नहीं होनी चाहिये। इसलिए संसारी होने पर भी वह ब्रह्मचर्यका पालन कर सकता है। यह बात ज्यादा खोलकर लिखनेकी जरूरत नहीं। स्त्रीका क्या विचार है? यह सब कैसे हो सकता है? ऐसे विचार मनमें पैदा होते हैं। फिर भी जिसे महान कार्योंमें हिस्सा लेना है, उसे तो ऐसे सवालोंका हल ढूंढ़ना ही होगा।

जैसे ब्रह्मचर्यकी जरूरत है वैसे ही गरीबीको अपनानेकी भी जरूरत है। पैसेका लोभ और सत्याग्रहका सेवन—पालन (दोनों साथ साथ) कभी नहीं चल सकते। लेकिन मेरा मतलब यह नहीं है कि जिसके पास पैसा है वह उसे फेंक दे। फिर भी पैसेके बारेमें लापरवाह रहनेकी जरूरत है। सत्याग्रहका सेवन करते हुए अगर पैसा चला जाय, तो चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

जो सत्यका सेवन नहीं करता, वह सत्यका बल, सत्यकी ताक़त कैसे दिखा सकेगा? इसलिए सत्यकी तो पूरी-पूरी जरूरत रहेगी ही। बड़ेसे बड़ा नुकसान होने पर भी सत्यको नहीं छोड़ा जा सकता। सत्यके लिए कुछ छिपानेको होता ही नहीं। इसलिए सत्याग्रहीके लिए छिपी सेनाकी जरूरत नहीं होती। जान बचानेके लिए झूठ बोलना चाहिये या नहीं, ऐसा सवाल यहां मनमें नहीं उठाना चाहिये। जिसे झूठका बचाव

---

१. निडर। २. नफ़सानी ख्वाहिश।

करना है, वही ऐसे बेकार सवाल उठाता है। जिसे सत्यकी ही राह लेनी है, उसके सामने ऐसे धर्म-संकट[1] कभी आते ही नहीं। ऐसी मुश्किल हालतमें आ पड़े तो भी सत्यवादी उसमें से उबर जाता है।

अभयके विना तो सत्याग्रहीकी गाड़ी एक कदम भी आगे नहीं चल सकती। अभय संपूर्ण और सब बातोंके लिए होना चाहिये। जमीन-जायदादका, झूठी इज्ज़तका, सगे-सम्बन्धियोंका, राज-दरबारका, शरीरको पहुंचनेवाली चोटोंका और मरणका अभय हो, तभी सत्याग्रहका पालन हो सकता है।

यह सब करना मुश्किल है, ऐसा मानकर इसे छोड़ नहीं देना चाहिये। जो सिर पर पड़ता है उसे सह लेनेकी शक्ति कुदरतने हर मनुष्यको दी है। जिसे देशसेवा न करनी हो, उसे भी ऐसे गुणोंका सेवन करना चाहिये।

इसके सिवा, हम यह भी समझ सकते हैं कि जिसे हथियार-बल पाना होगा, उसे भी इन बातोंकी ज़रूरत रहेगी। रणवीर होना कोई ऐसी बात नहीं कि किसीने इच्छा की और तुरन्त रणवीर हो गया। योद्धा (लड़वैया) को ब्रह्मचर्यका पालन करना होगा, भिखारी बनना होगा। रणमें जिसके भीतर अभय न हो वह लड़ नहीं सकता। उसे (योद्धाको) सत्यव्रतका पालन करनेकी उतनी ज़रूरत नहीं है, ऐसा शायद किसीको लगे। लेकिन जहां अभय है वहां सत्य कुदरती तौर पर रहता ही है। मनुष्य जब सत्यको छोड़ता है तब किसी तरहके भयके कारण ही छोड़ता है।

इसलिए इन चार गुणोंसे[2] डर जानेका कोई कारण नहीं है। फिर, तलवारबाज़को और भी कुछ बेकार कोशिशें करनी पड़ती हैं, जो सत्याग्रहीको नहीं करनी पड़तीं। तलवारबाज़को जो दूसरी कोशिशें करनी पड़ती हैं, उसका कारण भय है। अगर उसमें पूरी निडरता आ जाय, तो उसी पल उसके हाथसे तलवार गिर जायगी। फिर उसे तलवारके सहारेकी ज़रूरत नहीं रहती। जिसकी किसीसे दुश्मनी नहीं है, उसे तलवारकी ज़रूरत ही नहीं है। सिंहके सामने आनेवाले एक आदमीके हाथकी

---

१. दुविधा। २. सिफ़तोंसे।

लाठी अपने-आप उठ गई। उसने देखा कि अभयका पाठ उसने सिर्फ़ ज़बानी ही किया था। उसने लाठी छोड़ी और वह निर्भय — निडर बना।

१८

शिक्षा

पाठक : आपने इतना सारा कहा, परन्तु उसमें कहीं भी शिक्षा — तालीमकी जरूरत तो बताई ही नहीं। हम शिक्षाकी कमीकी हमेशा शिकायत करते रहते हैं। लाजिमी तालीम देनेका आन्दोलन हम सारे देशमें देखते हैं। महाराजा गायकवाड़ने (अपने राज्यमें) लाजिमी शिक्षा शुरू की है। उनकी ओर सबका ध्यान गया है। हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। यह सारी कोशिश क्या बेकार ही समझनी चाहिये?

संपादक : अगर हम अपनी सभ्यता[1]को सबसे अच्छी मानते हैं, तब तो मुझे अफसोसके साथ कहना पड़ेगा कि वह कोशिश ज्यादातर बेकार ही है। महाराजा साहब और हमारे दूसरे धुरन्धर[2] नेता सबको तालीम देनेकी जो कोशिश कर रहे हैं, उसमें उनका हेतु निर्मल है। इसलिए उन्हें धन्यवाद ही देना चाहिये। लेकिन उनके हेतुका जो नतीजा आनेकी संभावना है, उसे हम छिपा नहीं सकते।

शिक्षा — तालीमका अर्थ क्या है? अगर उसका अर्थ सिर्फ अक्षर-ज्ञान ही हो, तो वह तो एक साधन जैसी ही हुई। उसका अच्छा उपयोग भी हो सकता है और बुरा उपयोग भी हो सकता है। एक शस्त्र[3] से चीर-फाड़ करके बीमारको अच्छा किया जा सकता है और वही शस्त्र किसीकी जान लेनेके लिए भी काममें लाया जा सकता है। अक्षर-ज्ञानका भी ऐसा ही है। बहुतसे लोग उसका बुरा उपयोग करते हैं, यह तो हम देखते ही हैं। उसका अच्छा उपयोग प्रमाणमें[4] कम ही लोग करते हैं। यह बात अगर ठीक है तो इससे यह साबित होता है कि अक्षर-ज्ञानसे दुनियाको फायदेके बदले नुकसान ही हुआ है।

---

१. तहज़ीब। २. बहुत बड़े। ३. औज़ार। ४. मुकाबिलेमें।

शिक्षाका साधारण अर्थ अक्षर-ज्ञान ही होता है। लोगोंको लिखना, पढ़ना और हिसाब करना सिखाना बुनियादी या प्राथमिक — प्रायमरी — शिक्षा कहलाती है। एक किसान ईमानदारीसे खुद खेती करके रोटी कमाता है। उसे मामूली तौर पर दुनियवी ज्ञान है। अपने मां-बापके साथ कैसे बरतना, अपनी स्त्रीके साथ कैसे बरतना, बच्चोंसे कैसे पेश आना, जिस देहातमें वह बसा हुआ है वहां उसकी चालढाल कैसी होनी चाहिये, इस सबका उसे काफी ज्ञान है। वह नीतिके नियम समझता है और उनका पालन करता है। लेकिन वह अपने दस्तखत करना नहीं जानता। इस आदमीको आप अक्षर-ज्ञान देकर क्या करना चाहते हैं? उसके सुखमें आप कौनसी बढ़ती करेंगे? क्या उसकी झोंपड़ी या उसकी हालतके बारेमें आप उसके मनमें असंतोष पैदा करना चाहते हैं? ऐसा करना हो तो भी उसे अक्षर-ज्ञान देनेकी जरूरत नहीं है। पश्चिमके असरके नीचे आकर हमने यह बात चलायी है कि लोगोंको शिक्षा देनी चाहिये। लेकिन उसके बारेमें हम आगे-पीछेकी बात सोचते ही नहीं।

अब ऊंची शिक्षाको लें। मैं भूगोल-विद्या सीखा, खगोल-विद्या (आकाशके तारोंकी विद्या) सीखा, बीजगणित (एलजब्रा) भी मुझे आ गया, रेखागणित (ज्यॉमेट्री) का ज्ञान भी मैंने हासिल किया, भूगर्भ-विद्याको भी मैं पी गया। लेकिन उससे क्या? उससे मैंने अपना कौनसा भला किया? अपने आसपासके लोगोंका क्या भला किया? किस मकसदसे मैंने वह ज्ञान हासिल किया? उससे मुझे क्या फायदा हुआ? एक अंग्रेज विद्वान (हक्सली) ने शिक्षाके बारेमें यों कहा है: "उस आदमीने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसके शरीरको ऐसी आदत डाली गई है कि वह उसके बसमें रहता है, जिसका शरीर चैनसे और आसानीसे सौंपा हुआ काम करता है। उस आदमीने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी[1] है। उसने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसका मन कुदरती कानूनोंसे भरा है और जिसकी इन्द्रियां उसके बसमें हैं, जिसके मनकी भावनायें बिलकुल शुद्ध हैं, जिसे नीच कामोंसे

१. इन्साफ़को परखनेवाली।

नफ़रत है और जो दूसरोंको अपने जैसा मानता है। ऐसा आदमी ही सच्चा शिक्षित (तालीमशुदा) माना जायगा, क्योंकि वह कुदरतके कानूनके मुताबिक चलता है। कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरतका अच्छा उपयोग करेगा।" अगर यही सच्ची शिक्षा हो तो मैं कसम खाकर कहूंगा कि ऊपर जो शास्त्र मैंने गिनाये हैं उनका उपयोग मेरे शरीर या मेरी इन्द्रियोंको वशमें करनेके लिए मुझे नहीं करना पड़ा। इसलिए प्रायमरी — प्राथमिक शिक्षाको लीजिये या ऊंची शिक्षाको लीजिये, उसका उपयोग मुख्य बातमें नहीं होता। उससे हम मनुष्य नहीं बनते — उससे हम अपना कर्तव्य[1] नहीं जान सकते।

पाठक : अगर ऐसा ही है, तो मैं आपसे एक सवाल करूंगा। आप ये जो सारी बातें कह रहे हैं, वह किसकी बदौलत कह रहे हैं? अगर आपने अक्षर-ज्ञान और ऊंची शिक्षा नहीं पाई होती, तो ये सब बातें आप मुझे कैसे समझा पाते?

संपादक : आपने अच्छी सुनाई। लेकिन आपके सवालका मेरा जवाब भी सीधा ही है। अगर मैंने ऊंची या नीची शिक्षा नहीं पाई होती, तो मैं नहीं मानता कि मैं निकम्मा आदमी हो जाता। अब ये बातें कहकर मैं उपयोगी बननेकी इच्छा रखता हूं। ऐसा करते हुए जो कुछ मैंने पढ़ा उसे मैं काममें लाता हूं; और उसका उपयोग, अगर वह उपयोग हो तो, मैं अपने करोड़ों भाइयोंके लिए नहीं कर सकता, सिर्फ आप जैसे पढ़े-लिखोंके लिए ही कर सकता हूं। इससे भी मेरी ही बातका समर्थन[2] होता है। मैं और आप दोनों गलत शिक्षाके पंजेमें फंस गये थे। उसमें से मैं अपनेको मुक्त हुआ मानता हूं। अब वह अनुभव मैं आपको देता हूं और उसे देते समय ली हुई शिक्षाका उपयोग करके उसमें रही सड़न मैं आपको दिखाता हूं।

इसके सिवा, आपने जो बात मुझे सुनाई उसमें आप गलती खा गये, क्योंकि मैंने अक्षर-ज्ञानको (हर हालतमें) बुरा नहीं कहा है। मैंने तो इतना ही कहा है कि उस ज्ञानकी हमें मूर्तिकी तरह पूजा नहीं करनी चाहिये। वह हमारी कामधेनु[3] नहीं है। वह अपनी जगह पर शोभा

१. फ़र्ज़। २. ताईद। ३. मनचाहा देनेवाली गाय।

दे सकता है। और वह जगह यह है: जब मैंने और आपने अपनी इन्द्रियोंको वसमें कर लिया हो, जब हमने नीतिकी नींव मजबूत बना ली हो, तब अगर हमें अक्षर-ज्ञान पानेकी इच्छा हो, तो उसे पाकर हम उसका अच्छा उपयोग कर सकते हैं। वह शिक्षा आभूषण[1] के रूपमें अच्छी लग सकती है। लेकिन अक्षर-ज्ञानका अगर आभूषणके तौर पर ही उपयोग हो, तो ऐसी शिक्षाको लाजिमी करनेकी हमें ज़रूरत नहीं। हमारे पुराने स्कूल ही काफी हैं। वहां नीतिको पहला स्थान दिया जाता है। वह सच्ची प्राथमिक शिक्षा है। उस पर हम जो इमारत खड़ी करेंगे वह टिक सकेगी।

पाठक: तब क्या मेरा यह समझना ठीक है कि आप स्वराज्यके लिए अंग्रेजी शिक्षाका कोई उपयोग नहीं मानते?

संपादक: मेरा जवाब 'हां' और 'नहीं' दोनों है। करोड़ों लोगोंको अंग्रेजीकी शिक्षा देना उन्हें गुलामीमें डालने जैसा है। मेकॉलेने शिक्षाकी जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामीकी बुनियाद थी। उसने इसी इरादेसे अपनी योजना बनाई थी, ऐसा मैं नहीं सुझाना चाहता। लेकिन उसके कामका नतीजा यही निकला है। यह कितने दुखकी बात है कि हम स्वराज्यकी बात भी पराई भाषामें करते हैं?

जिस शिक्षाको अंग्रेजोंने ठुकरा दिया है वह हमारा सिंगार बनती है, यह जानने लायक है। उन्हींके विद्वान कहते रहते हैं कि उसमें यह अच्छा नहीं है, वह अच्छा नहीं है। वे जिसे भूल-से गये हैं, उसीसे हम अपने अज्ञानके कारण चिपके रहते हैं। उनमें अपनी अपनी भाषाकी उन्नति करनेकी कोशिश चल रही है। वेल्स इंग्लैंडका एक छोटासा परगना है; उसकी भाषा धूल जैसी नगण्य है। ऐसी भाषाका अब जीर्णोद्धार[2] हो रहा है।

वेल्सके बच्चे वेल्श भाषामें ही बोलें, ऐसी कोशिश वहां चल रही है। इसमें इंग्लैंडके खजांची लॉयड जॉर्ज बड़ा हिस्सा लेते हैं। और हमारी दशा कैसी है? हम एक-दूसरेको पत्र लिखते हैं तब गलत अंग्रेजीमें लिखते हैं। एक साधारण एम० ए० पास आदमी भी ऐसी गलत अंग्रेजीसे बचा

---

१. गहना। २. उद्धार-संवार, फिरसे जिलानेकी कोशिश।

नहीं होता। हमारे अच्छेसे अच्छे विचार प्रगट[1] करनेका जरिया है अंग्रेजी; हमारी कांग्रेसका कारोबार भी अंग्रेजीमें चलता है। अगर ऐसा लंबे अरसे तक चला, तो मेरा मानना है कि आनेवाली पीढ़ी हमारा तिरस्कार करेगी और उसका शाप[2] हमारी आत्माको लगेगा।

आपको समझना चाहिये कि अंग्रेजी शिक्षा लेकर हमने अपने राष्ट्रको गुलाम बनाया है। अंग्रेजी शिक्षासे दंभ,[3] राग,[4] जुल्म वगैरा बढ़े हैं। अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए लोगोंने प्रजाको ठगनेमें, उसे परेशान करनेमें कुछ भी उठा नहीं रखा है। अब अगर हम अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए लोग उसके लिए कुछ करते हैं, तो उसका हम पर जो क़र्ज चढ़ा हुआ है उसका कुछ हिस्सा ही हम अदा करते हैं।

यह क्या कम जुल्मकी बात है कि अपने देशमें अगर मुझे इन्साफ़ पाना हो, तो मुझे अंग्रेजी भाषाका उपयोग करना चाहिये! बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषामें बोल ही नहीं सकता! दूसरे आदमीको मेरे लिए तरजुमा कर देना चाहिये! यह कुछ कम दंभ है? यह गुलामीकी हद नहीं तो और क्या है? इसमें मैं अंग्रेजोंका दोष निकालूं या अपना? हिन्दुस्तानको गुलाम बनानेवाले तो हम अंग्रेजी जाननेवाले लोग ही हैं। राष्ट्रकी हाय अंग्रेजों पर नहीं पड़ेगी, बल्कि हम पर पड़ेगी।

लेकिन मैंने आपसे कहा कि मेरा जवाब 'हां' और 'ना' दोनों है। 'हां' कैसे सो मैंने आपको समझाया।

अब 'ना' कैसे यह बताता हूं। हम सभ्यताके रोगमें ऐसे फंस गये हैं कि अंग्रेजी शिक्षा बिलकुल लिये बिना अपना काम चला सकें ऐसा समय अब नहीं रहा। जिसने वह शिक्षा पाई है, वह उसका अच्छा उपयोग करे। अंग्रेजोंके साथके व्यवहारमें, ऐसे हिन्दुस्तानियोंके साथके व्यवहारमें जिनकी भाषा हम समझ न सकते हों और अंग्रेज खुद अपनी सभ्यतासे कैसे परेशान हो गये हैं यह समझनेके लिए अंग्रेजीका उपयोग किया जाय। जो लोग अंग्रेजी पढ़े हुए हैं उनकी संतानोंको पहले तो नीति सिखानी चाहिये, उनकी मातृभाषा[5] सिखानी चाहिये और

---

१. जाहिर। २. बददुआ। ३. ढोंग। ४. ममता; द्वेष। ५. मादरी जबान।

हिन्दुस्तानकी एक दूसरी भाषा सिखानी चाहिये। बालक जब पुख्ता (पक्की) उम्रके हो जायं तब भले ही वे अंग्रेजी शिक्षा पायें, और वह भी उसे मिटानेके इरादेसे, न कि उसके ज़रिये पैसे कमानेके इरादेसे। ऐसा करते हुए भी हमें यह सोचना होगा कि अंग्रेजीमें क्या सीखना चाहिये और क्या नहीं सीखना चाहिये। कौनसे शास्त्र पढ़ने चाहिये, यह भी हमें सोचना होगा। थोड़ा विचार करनेसे ही हमारी समझमें आ जायगा कि अगर अंग्रेजी डिग्री लेना हम बन्द कर दें, तो अंग्रेज हाकिम चौंकेंगे।

पाठक: तब कैसी शिक्षा दी जाय?

संपादक: उसका जवाब ऊपर कुछ हद तक आ गया है। फिर भी इस सवाल पर हम और विचार करें। मुझे तो लगता है कि हमें अपनी सभी भाषाओंको उज्ज्वल — शानदार बनाना चाहिये। हमें अपनी भाषामें ही शिक्षा लेनी चाहिये — इसके क्या मानी हैं, इसे ज्यादा समझानेका यह स्थान नहीं है। जो अंग्रेजी पुस्तकें कामकी हैं, उनका हमें अपनी भाषामें अनुवाद करना होगा। बहुतसे शास्त्र सीखनेका दंभ और वहम हमें छोड़ना होगा। सबसे पहले तो धर्मकी शिक्षा या नीतिकी शिक्षा दी जानी चाहिये। हरएक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानीको अपनी भाषाका, हिन्दूको संस्कृतका, मुसलमानको अरबीका, पारसीको फ़ारसीका और सबको हिन्दीका ज्ञान होना चाहिये। कुछ हिन्दुओंको अरबी और कुछ मुसलमानों और पारसियोंको संस्कृत सीखनी चाहिये। उत्तरी और पश्चिमी हिन्दुस्तानके लोगोंको तामिल सीखनी चाहिये। सारे हिन्दुस्तानके लिए जो भाषा चाहिये, वह तो हिन्दी ही होनी चाहिये। उसे उर्दू या नागरी लिपिमें लिखनेकी छूट रहनी चाहिये। हिन्दू-मुसलमानोंके संबंध ठीक रहें, इसलिए बहुतसे हिन्दुस्तानियोंका इन दोनों लिपियोंको जान लेना जरूरी है। ऐसा होनेसे हम आपसके व्यवहारमें अंग्रेजीको निकाल सकेंगे।

और यह सब किसके लिए जरूरी है? हम जो गुलाम बन गये हैं उनके लिए। हमारी गुलामीकी वजहसे देशकी प्रजा गुलाम बनी है। अगर हम गुलामीसे छूट जायं, तो प्रजा तो छूट ही जायगी।

पाठक: आपने जो धर्मकी शिक्षाकी बात कही वह बड़ी कठिन है।

संपादक: फिर भी उनके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। हिन्दुस्तान कभी नास्तिक नहीं बनेगा। हिन्दुस्तानकी भूमिमें नास्तिक फल-फूल नहीं सकते। बेशक, यह काम मुश्किल है। धर्मकी शिक्षाका खयाल करते ही सिर चकराने लगता है। धर्मके आचार्य दंभी और स्वार्थी[1] मालूम होते हैं। उनके पास पहुंचकर हमें नम्र भावसे उन्हें समझाना होगा। उसकी कुंजी मुल्लों, दस्तूरों और ब्राह्मणोंके हाथमें है। लेकिन उनमें अगर सद्बुद्धि पैदा न हो, तो अंग्रेजी शिक्षाके कारण हममें जो जोश पैदा हुआ है उसका उपयोग करके हम लोगोंको नीतिकी शिक्षा दे सकते हैं। यह कोई बहुत मुश्किल बात नहीं है। हिन्दुस्तानी सागरके किनारे पर ही मैल जमा है। उस मैलसे जो गंदे हो गये हैं उन्हें साफ होना है। हम लोग ऐसे ही हैं और खुद ही बहुत कुछ साफ हो सकते हैं। मेरी यह टीका करोड़ों लोगोंके बारेमें नहीं है। हिन्दुस्तानको असली रास्ते पर लानेके लिए हमें ही असली रास्ते पर आना होगा। बाकी करोड़ों लोग तो असली रास्ते पर ही हैं। उसमें सुधार, बिगाड़, उन्नति,[2] अवनति[3] समयके अनुसार होते ही रहेंगे। पश्चिमकी सभ्यताको निकाल बाहर करनेकी ही हमें कोशिश करनी चाहिये। दूसरा सब अपने-आप ठीक हो जायगा।

१९

मशीनें

पाठक: आप पश्चिमकी सभ्यताको निकाल बाहर करनेकी बात कहते हैं, तब तो आप यह भी कहेंगे कि हमें कोई भी मशीन नहीं चाहिये।

संपादक: मुझे जो चोट लगी थी उसे यह सवाल करके आपने ताजा कर दिया है। मि० रमेशचन्द्र दत्तकी पुस्तक 'हिन्दुस्तानका आर्थिक इतिहास' जब मैंने पढ़ी, तब भी मेरी ऐसी हालत हो गई थी। उसका फिरसे विचार करता हूं, तो मेरा दिल भर आता है। मशीनकी झपट लगनेसे ही हिन्दुस्तान पामाल हो गया है। मैन्चेस्टरने हमें जो नुकसान

१. खुदगरज। २. तरक्की। ३. गिरावट।

पहुंचाया है, उसकी तो कोई हद ही नहीं है। हिन्दुस्तानसे कारीगरी जो क़रीव-क़रीव खतम हो गई, वह मैन्चेस्टरका ही काम है।

लेकिन मैं भूलता हूं। मैन्चेस्टरको दोष कैसे दिया जा सकता है? हमने उसके कपड़े पहने तभी तो उसने कपड़े वनाये। वंगालकी वहादुरी-का वर्णन[1] जव मैंने पढ़ा तव मुझे हर्ष[2] हुआ। वंगालमें कपड़ेकी मिलें नहीं हैं, इसलिए लोगोंने अपना असली धंधा फिरसे हाथमें ले लिया। वंगाल वम्बईकी मिलोंको वढ़ावा देता है वह ठीक ही है; लेकिन अगर वंगालने तमाम मशीनोंसे परहेज किया होता, उनका वायकाट — वहिष्कार किया होता, तो और भी अच्छा होता।

मशीनें यूरोपको उजाड़ने लगी हैं और वहांकी हवा अव हिन्दुस्तानमें चल रही है। यंत्र आजकी सभ्यताकी मुख्य निशानी है और वह महापाप है, ऐसा मैं तो साफ देख सकता हूं।

वम्वईकी मिलोंमें जो मजदूर काम करते हैं, वे गुलाम वन गये हैं। जो औरतें उनमें काम करती हैं, उनकी हालत देखकर कोई भी कांप उठेगा। जव मिलोंकी वर्षा नहीं हुई थी तव वे औरतें भूखों नहीं मरती थीं। मशीनकी यह हवा अगर ज्यादा चली, तो हिन्दुस्तानकी वुरी दशा होगी। मेरी वात आपको कुछ मुश्किल मालूम होती होगी। लेकिन मुझे कहना चाहिये कि हम हिन्दुस्तानमें मिलें कायम करें, उसके वजाय हमारा भला इसीमें है कि हम मैन्चेस्टरको और भी रुपये भेजकर उसका सड़ा हुआ कपड़ा काममें लें; क्योंकि उसका कपड़ा काममें लेनेसे सिर्फ हमारे पैसे ही जायेंगे। हिन्दुस्तानमें अगर हम मैन्चेस्टर कायम करेंगे तो पैसा हिन्दुस्तानमें ही रहेगा, लेकिन वह पैसा हमारा खून चूसेगा; क्योंकि वह हमारी नीतिको विलकुल खतम कर देगा। जो लोग मिलोंमें काम करते हैं उनकी नीति कैसी है, यह उन्हींसे पूछा जाय। उनमें से जिन्होंने रुपये जमा किये हैं, उनकी नीति दूसरे पैसेवालोंसे अच्छी नहीं हो सकती। अमरीकाके रॉकफेलरोंसे हिन्दुस्तानके रॉकफेलर कुछ कम हैं, ऐसा मानना निरा अज्ञान है। गरीव हिन्दुस्तान तो गुलामीसे

१. ज़िक्र। २. भारी खुशी।

छूट सकेगा, लेकिन अनीतिसे पैसेवाला बना हुआ हिन्दुस्तान गुलामीसे कभी नहीं छूटेगा।

मुझे तो लगता है कि हमें यह स्वीकार करना होगा कि अंग्रेजी राज्यको यहां टिकाये रखनेवाले ये धनवान लोग ही हैं। ऐसी स्थितिमें ही उनका स्वार्थ सधेगा। पैसा आदमीको दीन[1] बना देता है। ऐसी दूसरी चीज दुनियामें विषय-भोग[2] है। ये दोनों विषय[3] विषमय[4] हैं। उनका डंक सांपके डंकसे ज्यादा जहरीला है। जब सांप काटता है तो हमारा शरीर लेकर हमें छोड़ देता है। जब पैसा या विषय काटता है तब वह शरीर, ज्ञान, मन सब-कुछ ले लेता है, तो भी हमारा छुटकारा नहीं होता। इसलिए हमारे देशमें मिलें कायम हों, इसमें खुश होने जैसा कुछ नहीं है।

पाठक : तब क्या मिलोंको बन्द कर दिया जाय?

संपादक : यह बात मुश्किल है। जो चीज स्थायी या मजबूत हो गई है, उसे निकालना मुश्किल है। इसीलिए काम शुरू न करना पहली बुद्धिमानी है।* मिल-मालिकोंकी ओर हम नफ़रतकी निगाहसे नहीं देख सकते। हमें उन पर दया करनी चाहिये। वे यकायक मिलें छोड़ दें, यह तो मुमकिन नहीं है; लेकिन हम उनसे ऐसी विनती कर सकते हैं कि वे अपने इस साहसको बढ़ायें नहीं। अगर वे देशका भला करना चाहें, तो खुद अपना काम धीरे धीरे कम कर सकते हैं। वे खुद पुराने, प्रौढ़, पवित्र चरखे देशके हजारों घरोंमें दाखिल कर सकते हैं और लोगोंका बुना हुआ कपड़ा लेकर उसे बेच सकते हैं।

अगर वे ऐसा न करें तो भी लोग खुद मशीनोंका कपड़ा इस्तेमाल करना बन्द कर सकते हैं।

पाठक : यह तो कपड़ेके बारेमें हुआ। लेकिन यंत्रकी बनी तो अनेक चीजें हैं। वे चीजें या तो हमें परदेशसे लेनी होंगी या ऐसे यंत्र हमारे देशमें दाखिल करने होंगे।

---

१. लाचार। २. शहवत। ३. बातें। ४. जहरीले।

* अनारम्भो हि कार्याणाम् प्रथमं बुद्धिलक्षणम्।
आरब्धस्यान्तगमनम् द्वितीयं बुद्धिलक्षणम्॥

संपादक : सचमुच हमारे देव (मूर्तियां) भी जर्मनीके यंत्रोंमें बनकर आते हैं; तो फिर दियासलाई या आलपिनसे लेकर कांचके झाड़-फानूसकी तो बात ही क्या? मेरा अपना जवाब तो एक ही है। जब ये सब चीजें यंत्रसे नहीं बनती थीं तब हिन्दुस्तान क्या करता था? वैसा ही वह आज भी कर सकता है। जब तक हम हाथसे आलपिन नहीं बनायेंगे तब तक उसके बिना हम अपना काम चला लेंगे। झाड़-फानूसको आग लगा देंगे। मिट्टीके दीयेमें तेल डालकर और हमारे खेतमें पैदा हुई रुईकी बत्ती बना कर दीया जलायेंगे। ऐसा करनेसे हमारी आंखें (खराब होनेसे) बचेंगी, पैसे बचेंगे और हम स्वदेशी रहेंगे, बनेंगे और स्वराज्यकी धूनी जगायेंगे।

यह सारा काम सब लोग एक ही समयमें करेंगे या एक ही समयमें कुछ लोग यंत्रकी सब चीजें छोड़ देंगे, यह संभव नहीं है। लेकिन अगर यह विचार सही होगा, तो हम हमेशा शोध-खोज करते रहेंगे और हमेशा थोड़ी-थोड़ी चीजें छोड़ते जायेंगे। अगर हम ऐसा करेंगे, तो दूसरे लोग भी ऐसा करेंगे। पहले तो यह विचार जड़ पकड़े यह ज़रूरी है; बादमें उसके मुताबिक काम होगा। पहले एक ही आदमी करेगा, फिर दस, फिर सौ — यों नारियलकी कहानीकी तरह लोग बढ़ते ही जायेंगे। बड़े लोग जो काम करते हैं, उसे छोटे भी करते हैं और करेंगे। समझें तो बात छोटी और सरल है। आपको और मुझे दूसरोंके करनेकी राह नहीं देखना है। हम तो ज्यों ही समझ लें त्यों ही उसे शुरू कर दें। जो नहीं करेगा वह खोयेगा। समझते हुए भी जो नहीं करेगा, वह निरा दंभी कहलायेगा।

पाठक : ट्रामगाड़ी और बिजलीकी बत्तीका क्या होगा?

संपादक : यह सवाल आपने बहुत देरसे किया। इस सवालमें अब कोई जान नहीं रही। रेलने अगर हमारा नाश किया है, तो क्या ट्राम नहीं करती? यंत्र तो सांपका ऐसा बिल है, जिसमें एक नहीं बल्कि सैकड़ों सांप होते हैं। एकके पीछे दूसरा लगा ही रहता है। जहां यंत्र होंगे वहां बड़े शहर होंगे। जहां बड़े शहर होंगे वहां ट्रामगाड़ी और रेलगाड़ी होगी। वहीं बिजलीकी बत्तीकी ज़रूरत रहती है। आप जानते होंगे कि विलायतमें भी देहातोंमें बिजलीकी बत्ती या ट्राम नहीं है। ग्रामा-

णिक[1] वैद्य और डॉक्टर आपको बतायेंगे कि जहां रेलगाड़ी, ट्रामगाड़ी वगैरा साधन[2] बढ़े हैं, वहां लोगोंकी तन्दुरुस्ती गिरी हुई होती है। मुझे याद है कि यूरोपके एक शहरमें जब पैसेकी तंगी हो गई थी तब ट्रामों, वकीलों और डॉक्टरोंकी आमदनी घट गयी थी, लेकिन लोग तन्दुरुस्त हो गये थे।

यंत्रका गुण तो मुझे एक भी याद नहीं आता, जब कि उसके अवगुणोंसे मैं पूरी किताब लिख सकता हूं।

पाठक : यह सारा लिखा हुआ यंत्रकी मददसे छापा जायगा और उसकी मददसे बांटा जायगा, यह यंत्रका गुण है या अवगुण?

संपादक : यह 'जहरकी दवा जहर है' की मिसाल है। इसमें यंत्रका कोई गुण नहीं है। यंत्र मरते मरते कह जाता है कि 'मुझसे बचिये, होशियार रहिये; मुझसे आपको कोई फायदा नहीं होनेका।' अगर ऐसा कहा जाय कि यंत्रने इतनी ठीक कोशिश की, तो यह भी उन्हींके लिए लागू होता है जो यंत्रकी जालमें फंसे हुए हैं।

लेकिन मूल बात न भूलियेगा। मनमें यह तय कर लेना चाहिये कि यंत्र खराब चीज है। बादमें हम उसका धीरे-धीरे नाश करेंगे। ऐसा कोई सरल[3] रास्ता कुदरतने ही बनाया नहीं है कि जिस चीजकी हमें इच्छा हो वह तुरन्त मिल जाय। यंत्रके ऊपर हमारी मीठी नजरके बजाय जहरीली नजर पड़ेगी, तो आखिर वह जायगा ही।

---

१. ईमानदार। २. जरिये। ३. आसान, सीधा।

छुटकारा

पाठक: आपके विचारोंसे ऐसा लगता है कि आप एक तीसरा ही पक्ष कायम करना चाहते हैं। आप एक्स्ट्रीमिस्ट भी नहीं हैं और मॉडरेट भी नहीं हैं।

संपादक: यहां आपकी भूल होती है। मेरे मनमें तीसरे पक्षका कोई ख़याल नहीं है। सबके विचार एकसे नहीं रहते। मॉडरेटोंमें भी सब एक ही विचारके हैं, ऐसा नहीं मानना चाहिये। जिसे (लोगोंकी) सेवा ही करनी है, उसके लिए पक्ष कैसा? मैं तो मॉडरेटोंकी सेवा करूंगा और एक्स्ट्रीमिस्टोंकी भी करूंगा। जहां उनके विचारसे मेरी राय अलग पड़ेगी वहां मैं उन्हें नम्रतासे बताऊंगा और अपना काम करता चलूंगा।

पाठक: अगर आप दोनोंसे कहना चाहें तो क्या कहेंगे?

संपादक: एक्स्ट्रीमिस्टोंसे मैं कहूंगा कि आपका हेतु हिन्दुस्तानके लिए स्वराज्य हासिल करनेका है। स्वराज्य आपकी कोशिशसे मिलनेवाला नहीं है। स्वराज्य तो सबको अपने लिए पाना चाहिये — और सबको उसे अपना बनाना चाहिये। दूसरे लोग जो स्वराज्य दिला दें वह स्वराज्य नहीं है, बल्कि परराज्य है। इसलिए सिर्फ अंग्रेजोंको बाहर निकाला कि आपने स्वराज्य पा लिया, ऐसा अगर आप मानते हों तो वह ठीक नहीं है। सच्चा स्वराज्य जो मैंने पहले बताया वही होना चाहिये। उसे आप गोला-बारूदसे कभी नहीं पायेंगे। गोला-बारूद हिन्दुस्तानको सधेगा नहीं। इसलिए सत्याग्रह पर ही भरोसा रखिये। मनमें ऐसा शक भी पैदा न होने दीजिये कि स्वराज्य पानेके लिए हमें गोला-बारूदकी ज़रूरत है।

मॉडरेटोंसे मैं कहूंगा कि हम खाली आजिज़ी करना चाहें, यह तो हमारी हीनता[1] होगी। उसमें हम अपना हलकापन कबूल करते हैं। 'अंग्रेजोंसे सम्बन्ध रखना हमारे लिए ज़रूरी है'—ऐसा कहना हमारे लिए ईश्वरके चोर बनने जैसा हो जाता है। हमें ईश्वरके सिवा और

१. कमी।

किसीकी जरूरत है, ऐसा कहना ठीक नहीं है। और साधारण विचार करनेसे भी हमें लगेगा कि 'अंग्रेजोंके बिना आज तो हमारा काम चलेगा ही नहीं'—ऐसा कहना अंग्रेजोंको अभिमानी बनाने जैसा होगा।

अंग्रेज बोरिया-बिस्तर बांधकर अगर चले जायेंगे, तो हिन्दुस्तान अनाथ हो जायगा ऐसा हमें नहीं मानना चाहिये। अगर वे गये तो संभव है कि जो लोग उनके दबावसे चुप रहे होंगे वे लड़ेंगे। फोड़ेको दबाकर रखनेसे कोई फायदा नहीं। उसे तो फूटना ही चाहिये। इसलिए अगर हमारे भागमें आपसमें लड़ना ही लिखा होगा तो हम लड़ मरेंगे। उसमें कमजोरको बचानेके बहाने किसी दूसरेको बीचमें पड़नेकी जरूरत नहीं है। इसीसे तो हमारा सत्यानाश हुआ है। इस तरह कमजोरको बचाना उसे और भी कमजोर बनाने जैसा है। मॉडरेटोंको इस बात पर अच्छी तरह विचार करना चाहिये। इसके बिना स्वराज्य नहीं प्राप्त हो सकता। मैं उन्हें एक अंग्रेज पादरीके इन शब्दोंकी याद दिलाऊंगा: "स्वराज्यमें अधाधुंधी बरदाश्त की जा सकती है, लेकिन परराज्यकी व्यवस्था[1] हमारी कंगालीको बताती है।" सिर्फ उस पादरीके स्वराज्यका और हिन्दुस्तानके स्वराज्यका अर्थ अलग है। हम किसीका भी जुल्म या दबाव नहीं चाहते—चाहे वह गोरा हो या हिन्दुस्तानी हो। हम सबको तैरना सीखना और सिखाना है।

अगर ऐसा हो तो एक्स्ट्रीमिस्ट और मॉडरेट दोनों मिलेंगे—मिल सकेंगे—दोनोंको मिलना चाहिये; दोनोंको एक-दूसरेका डर रखनेकी या अविश्वास करनेकी जरूरत नहीं है।

पाठक: इतना तो आप दोनों पक्षोंसे कहेंगे। परन्तु अंग्रेजोंसे क्या कहेंगे?

संपादक: उनसे मैं विनयसे कहूंगा कि आप हमारे राजा जरूर हैं। आप अपनी तलवारसे हमारे राजा हैं या हमारी इच्छासे, इस सवालकी चर्चा मुझे करनेकी जरूरत नहीं। आप हमारे देशमें रहें, इसका भी मुझे द्वेष[2] नहीं है। लेकिन राजा होते हुए भी आपको हमारे नौकर बनकर यहां रहना होगा। आपका कहा हमें नहीं, बल्कि हमारा कहा

---

१. बन्दोबस्त। २. डाह, ईर्ष्या, वैर।

आपको करना होगा। आज तक आप इस देशसे जो धन ले गये, वह भले आपने हजम कर लिया। लेकिन अब आगे आपका ऐसा करना हमें पसन्द नहीं होगा। आप हिन्दुस्तानमें सिपाहगिरी करना चाहें तो रह सकते हैं। हमारे साथ व्यापार करनेका लालच आपको छोड़ना होगा। जिस सभ्यताकी आप हिमायत करते हैं, उसे हम नुकसानदेह मानते हैं। अपनी सभ्यताको हम आपकी सभ्यतासे कहीं ज्यादा ऊंची समझते हैं। आपको भी ऐसा लगे तो उसमें आपका लाभ ही है। लेकिन ऐसा न लगे तो भी आपको, आपकी ही कहावत* के मुताबिक, हमारे देशमें हिन्दुस्तानी होकर रहना होगा। आपको ऐसा कुछ नहीं करना चाहिये, जिससे हमारे धर्मको बाधा पहुंचे। राजकर्ता होनेके नाते आपका फ़र्ज है कि हिन्दुओंकी भावनाका आदर करनेके लिए आप गायका मांस खाना छोड़ दें और मुसलमानोंके खातिर बुरे जानवर (सूअर)का मांस खाना छोड़ दें। हम दब गये थे इसलिए बोल नहीं सके, लेकिन आप ऐसा न समझें कि आपके इस बरतावसे हमारी भावनाओंको चोट नहीं पहुंची है। हम स्वार्थ या दूसरे भयसे आज तक कह नहीं सके, लेकिन अब यह कहना हमारा फ़र्ज हो गया है। हम मानते हैं कि आपकी कायम की हुई शालाएं और अदालतें हमारे किसी कामकी नहीं हैं। उनके बजाय हमारी पुरानी असली शालाएं और अदालतें ही हमें चाहिये।

हिन्दुस्तानकी आम भाषा अंग्रेजी नहीं बल्कि हिन्दी है। वह आपको सीखनी होगी और हम तो आपके साथ अपनी भाषामें ही व्यवहार करेंगे।

आप रेलवे और फ़ौजके लिए बेशुमार रुपये खर्च करते हैं, यह हमसे देखा नहीं जाता। हमें उसकी जरूरत नहीं मालूम होती। रूसका डर आपको होगा, हमें नहीं है। रूसी आयेंगे तब हम उनसे निबट लेंगे; आप होंगे तो हम दोनों मिलकर उनसे निबट लेंगे। हमें विलायती या यूरोपी कपड़ा नहीं चाहिये। इस देशमें पैदा होनेवाली चीजोंसे ही हम अपना काम चला लेंगे। आपकी एक आंख मैन्चेस्टर पर और दूसरी हम पर रहे, यह अब नहीं पुसायेगा। आपका और हमारा स्वार्थ एक ही है, इस तरह आप बरतेंगे तभी हमारा साथ बना रह सकता है।

---

* Be a Roman in Rome — रोममें रोमन बनकर रहो।

आपसे यह सब हम बेअदबीसे नहीं कह रहे हैं। आपके पास हथियार-बल्ल है, भारी जहाजी सेना है। उसके खिलाफ वैसी ही ताक़तसे हम नहीं लड़ सकते। लेकिन आपको अगर ऊपर कही गई बात मंजूर न हो, तो आपसे हमारी नहीं बनेगी। आपकी मरजीमें आये तो और मुमकिन हो तो आप हमें तलवारसे काट सकते हैं, मरजीमें आये तो हमें तोपसे उड़ा सकते हैं। हमें जो पसंद नहीं है वह अगर आप करेंगे, तो हम आपकी मदद नहीं करेंगे; और बगैर हमारी मददके आप एक कदम भी नहीं चल सकेंगे।

संभव है कि अपनी सत्ताके मदमें हमारी इस बातको आप हंसीमें उड़ा दें। आपका हंसना बेकार है, ऐसा आज शायद हम नहीं दिखा सकें। लेकिन अगर हममें कुछ दम होगा, तो आप देखेंगे कि आपका मद[1] बेकार है और आपका हंसना (विनाश-कालकी) विपरीत[2] बुद्धिकी निशानी है।

हम मानते हैं कि आप स्वभावसे धार्मिक राष्ट्रकी प्रजा हैं। हम तो धर्मस्थानमें ही बसे हुए हैं। आपका और हमारा कैसे साथ हुआ, इसमें उतरना फ़िज़ूल है। लेकिन अपने इस सम्बन्धका हम दोनों अच्छा उपयोग कर सकते हैं।

आप हिन्दुस्तानमें आनेवाले जो अंग्रेज हैं वे अंग्रेज प्रजाके सच्चे नमूने नहीं हैं; और हम जो आधे अंग्रेज जैसे बन गये हैं वे भी सच्ची हिन्दुस्तानी प्रजाके नमूने नहीं कहे जा सकते। अंग्रेज प्रजाको अगर आपकी करतूतोंके बारेमें सब मालूम हो जाय, तो वह आपके कामोंके खिलाफ हो जाय। हिन्दकी प्रजाने तो आपके साथ संबंध थोड़ा ही रखा है। आप अपनी सभ्यताको, जो दरअसल बिगाड़ करनेवाली है, छोड़ कर अपने धर्मकी छानबीन करेंगे, तो आपको लगेगा कि हमारी मांग ठीक है। इसी तरह आप हिन्दुस्तानमें रह सकते हैं। अगर उस ढंगसे आप यहां रहेंगे तो आपसे हमें जो थोड़ा सीखना है वह हम सीखेंगे और हमसे आपको जो बहुत सीखना है वह आप सीखेंगे। इस तरह हम (एक-

---

१. गरूर, घमंड। २. उलटी।

दूसरेसे) लाभ उठायेंगे और सारी दुनियाको लाभ पहुंचायेंगे। लेकिन यह तो तभी हो सकता है जब हमारे संबंधकी जड़ धर्मक्षेत्रमें जमे।

पाठक: राष्ट्रसे आप क्या कहेंगे?

संपादक: राष्ट्र कौन?

पाठक: अभी तो आप जिस अर्थमें यह शब्द काममें लेते हैं उसी अर्थवाला राष्ट्र, यानी जो लोग यूरोपकी सभ्यतामें रंगे हुए हैं, जो स्वराज्यकी आवाज उठा रहे हैं।

संपादक: इस राष्ट्रसे मैं कहूंगा कि जिस हिन्दुस्तानीको (स्वराज्यकी) सच्ची खुमारी यानी मस्ती चढ़ी होगी, वही अंग्रेजोंसे ऊपरकी बात कह सकेगा और उनके रोबसे नहीं दबेगा।

सच्ची मस्ती तो उसीको चढ़ सकती है, जो ज्ञानपूर्वक — समझबूझकर — यह मानता हो कि हिन्दकी सभ्यता सबसे अच्छी है और यूरोपकी सभ्यता चार दिनकी चांदनी है। वैसे सभ्यतायें तो आज तक कई हो गयीं और मिट्टीमें मिल गयीं; आगे भी कई होंगी और मिट्टीमें मिल जायंगी।

सच्ची खुमारी उसीको हो सकती है, जो आत्मबल अनुभव करके शरीर-बलसे नहीं दबेगा और निडर रहेगा तथा सपनेमें भी तोप-बलका उपयोग करनेकी बात नहीं सोचेगा।

सच्ची खुमारी उसी हिन्दुस्तानीको रहेगी, जो आजकी लाचार हालतसे बहुत ऊब गया होगा और जिसने पहलेसे ही ज़हरका प्याला पी लिया होगा।

ऐसा हिन्दुस्तानी अगर एक ही होगा, तो वह भी ऊपरकी बात अंग्रेजोंसे कहेगा और अंग्रेजोंको उसकी बात सुननी पड़ेगी।

ऊपरकी मांग मांग नहीं है; वह हिन्दुस्तानियोंके मनकी दशाको बताती है। मांगनेसे कुछ नहीं मिलेगा; वह तो हमें खुद लेना होगा। उसे लेनेकी हममें ताक़त होनी चाहिये। यह ताक़त उसीमें होगी:

(१) जो अंग्रेजी भाषाका उपयोग लाचारीसे ही करेगा।

(२) जो वकील होगा तो अपनी वकालत छोड़ देगा और खुद घरमें चरखा चलाकर कपड़े बुन लेगा।

(३) जो वकील होनेके कारण अपने ज्ञानका उपयोग सिर्फ लोगोंको समझाने और लोगोंकी आंखें खोलनेमें करेगा।

(४) जो वकील होकर वादी-प्रतिवादी — मुद्दई और मुद्दालेह — के झगड़ोंमें नहीं पड़ेगा, अदालतोंको छोड़ देगा और अपने अनुभवसे दूसरोंको अदालतें छोड़नेके लिए समझायेगा।

(५) जो वकील होते हुए भी जैसे वकालत छोड़ेगा वैसे न्यायाधीशपन[1] भी छोड़ेगा।

(६) जो डॉक्टर होते हुए भी अपना पेशा छोड़ेगा और समझेगा कि लोगोंकी चमड़ी चोंथनेके बजाय बेहतर है कि उनकी आत्माको छुआ जाय और उसके बारेमें शोध-खोज करके उन्हें तंदुरुस्त बनाया जाय।

(७) जो डॉक्टर होनेसे समझेगा कि खुद चाहे जिस धर्मका हो, लेकिन अंग्रेजी वैदकशालाओं — फार्मसियों — में जीवों पर जो निर्दयता की जाती है, वैसी निर्दयतासे (बनी हुई दवाओंसे) शरीरको चंगा करनेके बजाय बेहतर है कि शरीर रोगी रहे।

(८) जो डॉक्टर होने पर भी खुद चरखा चलायेगा और जो लोग बीमार होंगे उन्हें उनकी बीमारीका सही कारण बताकर उसे दूर करनेके लिए कहेगा; निकम्मी दवाएं देकर उन्हें गलत लाड़ नहीं लड़ायेगा। वह तो यही समझेगा कि निकम्मी दवाएं न लेनेसे बीमारकी देह अगर गिर भी जाय, तो उससे दुनिया अनाथ नहीं हो जायगी, और यही मानेगा कि उसने बीमार पर सच्ची दया की है।

(९) जो धनी होने पर भी धनकी परवाह किये बिना अपने मनमें होगा वही कहेगा और बड़े-से-बड़े सत्ताधीशकी भी परवाह न करेगा।

(१०) जो धनी होनेसे अपना रुपया चरखे चालू करनेमें खरचेगा और खुद सिर्फ स्वदेशी मालका इस्तेमाल करके दूसरोंको भी ऐसा करनेके लिए बढ़ावा देगा।

(११) दूसरे हर हिन्दुस्तानीकी तरह जो यह समझेगा कि यह समय पश्चात्ताप[2]का, प्रायश्चित्त[3]का और शोक[4]का है।

---

१. जजी। २. अफ़सोस, पछतावा। ३. कफ़्फ़ारा। ४. मातम।

(१२) जो दूसरे हर हिन्दुस्तानीकी तरह यह समझेगा कि अंग्रेजोंका क़सूर निकालना बेकार है। हमारे क़सूरकी वजहसे वे हिन्दुस्तानमें आये, हमारे क़सूरके कारण ही वे यहां रहते हैं और हमारा क़सूर दूर होगा तब वे यहांसे चले जायेंगे या बदल जायेंगे।

(१३) दूसरे हिन्दुस्तानियोंकी तरह जो यह समझेगा कि मातमके वक्त मौज-शौक नहीं हो सकते। जब तक हमें चैन नहीं है तब तक हमारा जेलमें रहना या देशनिकाला भोगना ही ठीक है।

(१४) जो दूसरे हिन्दुस्तानियोंकी तरह यह समझेगा कि लोगोंको समझानेके बहाने जेलमें न जानेकी खबरदारी रखना निरा मोह है।

(१५) जो दूसरे हिन्दुस्तानियोंकी तरह यह समझेगा कि कहनेसे करनेका असर अद्‌भुत होता है; हम निडर होकर जो मनमें है वही कहेंगे और इस तरह कहनेका जो नतीजा आये उसे सहेंगे, तभी हम अपने कहनेका असर दूसरों पर डाल सकेंगे।

(१६) जो दूसरे हिन्दुस्तानियोंकी तरह यह समझेगा कि हम दुख सहन करके ही बंधन यानी गुलामीसे छूट सकेंगे।

(१७) जो दूसरे हिन्दुस्तानियोंकी तरह समझेगा कि अंग्रेजोंकी सभ्यताको बढ़ावा देकर हमने जो पाप किया है, उसे धो डालनेके लिए अगर हमें मरने तक भी अंदमानमें रहना पड़े, तो वह कुछ ज्यादा नहीं होगा।

(१८) जो दूसरे हिन्दुस्तानियोंकी तरह समझेगा कि कोई भी राष्ट्र दुख सहन किये बिना ऊपर चढ़ा नहीं है। लड़ाईके मैदानमें भी दुख ही कसौटी होता है, न कि दूसरेको मारना। सत्याग्रहके बारेमें भी ऐसा ही है।

(१९) जो दूसरे हिन्दुस्तानियोंकी तरह समझेगा कि यह कहना कुछ न करनेके लिए एक बहाना भर है कि 'जब सब लोग करेंगे तब हम भी करेंगे'। हमें ठीक लगता है इसलिए हम करें, जब दूसरोंको ठीक लगेगा तब वे करेंगे — यही करनेका सच्चा रास्ता है। अगर मैं स्वादिष्ट[1] भोजन देखता हूं, तो उसे खानेके लिए दूसरेकी राह नहीं देखता। ऊपर कहे मुताबिक प्रयत्न[2] करना, दुख सहना यह स्वादिष्ट भोजन है। ऊबकर लाचारीसे करना या दुख सहना निरी बेगार है।

१. जायकेदार। २. कोशिश।

पाठक : सब ऐसा कब करेंगे और कब उसका अंत आयेगा?

संपादक : आप फिर भूलते हैं। सबकी न तो मुझे परवाह है, न आपको होनी चाहिये। 'आप अपना देख लीजिये, मैं अपना देख लूंगा' —यह स्वार्थ-वचन माना जाता है, लेकिन यह परमार्थ-वचन भी है। मैं अपना उजालूंगा — अपना भला करूंगा, तभी दूसरेका भला कर सकूंगा। अपना कर्तव्य[1] मैं कर लूं, इसीमें कामकी सारी सिद्धियां समाई हुई हैं।

आपको विदा करनेसे पहले फिर एक बार मैं यह दोहरानेकी इजाजत चाहता हूं कि :

(१) अपने मनका राज्य स्वराज्य है।

(२) उसकी कुंजी सत्याग्रह, आत्मबल या करुणा-बल है।

(३) उस बलको आजमानेके लिए स्वदेशीको पूरी तरह अपनानेकी जरूरत है।

(४) हम जो करना चाहते हैं वह अंग्रेजोंके लिए (हमारे मनमें) द्वेष है इसलिए या उन्हें सजा देनेके लिए नहीं करें, बल्कि इसलिए करें कि ऐसा करना हमारा कर्तव्य है। मतलब यह कि अंग्रेज अगर नमक-महसूल रद कर दें, लिया हुआ धन वापस कर दें, सब हिन्दुस्तानियोंको बड़े बड़े ओहदे दे दें और अंग्रेजी लश्कर हटा लें, तो हम उनकी मिलोंका कपड़ा पहनेंगे, या अंग्रेजी भाषा काममें लायेंगे, या उनकी हुनर-कलाका उपयोग करेंगे सो बात नहीं है। हमें यह समझना चाहिये कि वह सब दरअसल नहीं करने जैसा है, इसलिए हम उसे नहीं करेंगे।

मैंने जो कुछ कहा है वह अंग्रेजोंके लिए द्वेष होनेके कारण नहीं, बल्कि उनकी सभ्यताके लिए द्वेष होनेके कारण कहा है।

मुझे लगता है कि हमने स्वराज्यका नाम तो लिया, लेकिन उसका स्वरूप हम नहीं समझे हैं। मैंने उसे जैसा समझा है वैसा यहां बतानेकी कोशिश की है।

मेरा मन गवाही देता है कि ऐसा स्वराज्य पानेके लिए मेरा यह शरीर समर्पित[2] है।

---

१. फ़र्ज। २. भेंट, नजर किया हुआ।

परिशिष्ट – १

'हिन्द स्वराज्य' के हिन्दी अनुवादके लिए गांधीजीने जो प्रस्तावना लिखी थी, उसमें उन्होंने मिलोंके बारेमें नीचेकी बात कही थी:

"यह पुस्तक मैंने सन् १९०९ में लिखी थी। १२ वर्षके अनुभवके बाद भी मेरे विचार जैसे उस समय थे वैसे ही आज हैं। मैं आशा करता हूं कि पाठक मेरे इन विचारोंका प्रयोग करके उनकी सिद्धता अथवा असिद्धताका निर्णय कर लेंगे।

"मिलोंके सम्बन्धमें मेरे विचारोंमें इतना परिवर्तन हुआ है कि हिन्दुस्तानकी आजकी हालतमें मैन्चेस्टरके कपड़ेके बजाय हिन्दुस्तानकी मिलोंको प्रोत्साहन देकर भी अपनी जरूरतका कपड़ा हमें अपने देशमें ही पैदा कर लेना चाहिये।"

[सन् १९२१]

'हिन्द स्वराज्य' के अंग्रेजी अनुवादकी प्रस्तावना लिखते हुए गांधीजीने इस पुस्तकका एक ग्राम्य शब्द सुधारनेकी इच्छा बताई थी:

"इस समय इस पुस्तकको इसी रूपमें प्रकाशित करना मैं आवश्यक समझता हूं। परन्तु यदि इसमें मुझे कुछ भी सुधार करना हो, तो मैं एक शब्द सुधारना चाहूंगा। एक अंग्रेज महिला मित्रको मैंने वह शब्द बदलनेका वचन दिया है। पार्लियामेन्टको मैंने वेश्या कहा है। यह शब्द उन बहनको पसन्द नहीं है। उनके कोमल हृदयको इस शब्दके ग्राम्य भावसे दुःख पहुंचा है।"

[सन् १९२१]

परिशिष्ट – २

कुछ प्रमाणभूत ग्रंथ

'हिन्द स्वराज्य' के अध्ययनको आगे बढ़ानेके लिए नीचेकी पुस्तकें पढ़ना उपयोगी होगा :

1. The Kingdom of God is Within You—*Tolstoy*
2. What is Art?—*Tolstoy*
3. The Slavery of Our Times—*Tolstoy*
4. The First Step—*Tolstoy*
5. How Shall We Escape?—*Tolstoy*
6. Letter to a Hindoo—*Tolstoy*
7. The White Slaves of England—*Sherard*
8. Civilization, Its Cause and Cure—*Carpenter*
9. The Fallacy of Speed—*Taylor*
10. A New Crusade—*Blount*
11. On the Duty of Civil Disobedience—*Thoreau*
12. Life Without Principle—*Thoreau*
13. Unto This Last—*Ruskin*
14. A Joy for Ever—*Ruskin*
15. Duties of Man—*Mazzini*
16. Defence and Death of Socrates—From *Plato*
17. Paradoxes of Civilization—*Max Nordau*
18. Poverty and Un-British Rule in India—*Naoroji*
19. Economic History of India—*Dutt*
20. Village Communities—*Maine*